બહતા જીવન મુડતી ધારા

ઉષા ચૌધરી

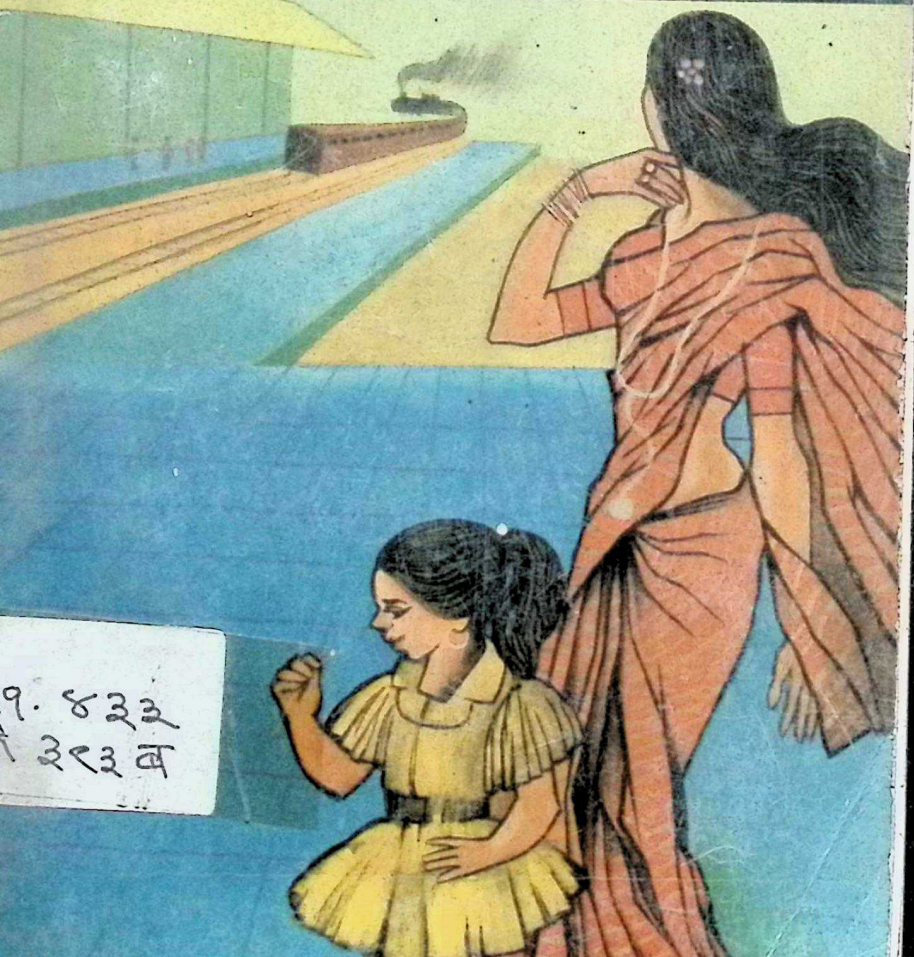

१. ४३३
३९३ ब

ऊषा चौधरी

बहता जीवन मुड़ती धारा

ऊषा चौधरी

हसनपुर (मुरादाबाद) में जन्मी ऊषा चौधरी ने भाषा विज्ञान में पी–एच० डी० किया है। शिक्षा प्राप्ति के बाद जगह-जगह अध्यापन कार्य किया। 'बहता जीवन मुड़ती धारा' इनकी प्रथम औपन्यासिक कृति है। एक कविता संग्रह और एक कहानी संग्रह भी प्रकाशनाधीन है। सम्प्रति उत्तर प्रदेश शासन की हिन्दी समिति (लखनऊ) में सम्पादक के पद पर।

सम्पर्क सूत्र :

सी १७, सचिवालय कालोनी

महानगर, लखनऊ—६

E 59833
सी 3529

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो०बा०१०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

बहता जीवन मुड़ती धारा

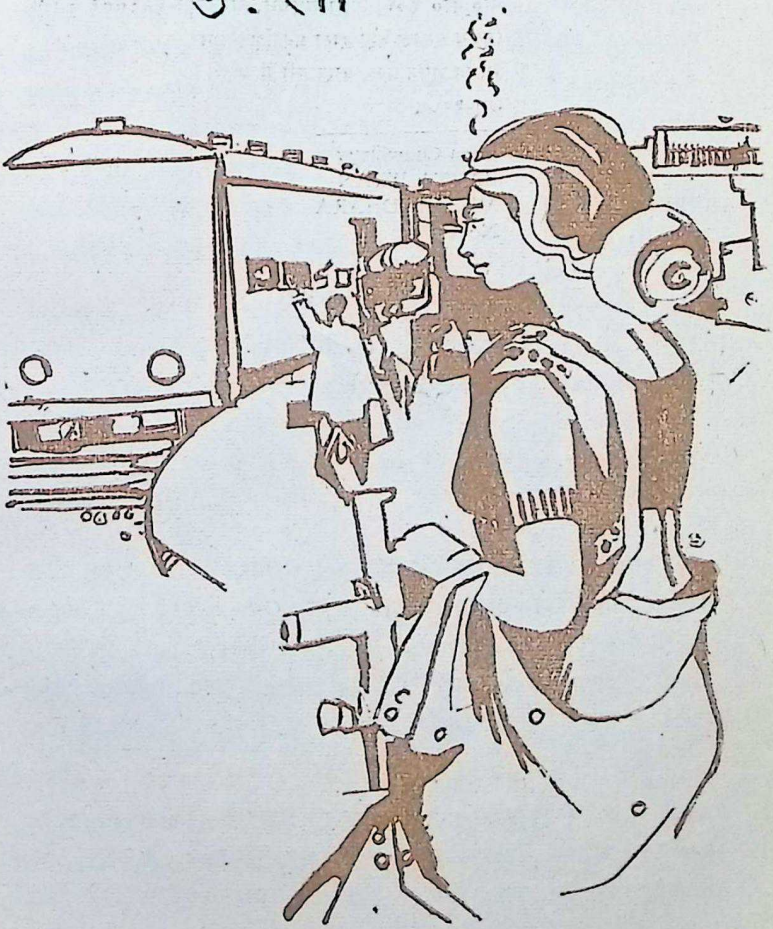

भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९७६

Usha Chowdhary
BAHTA JIWAN
MURATI DHARA
Novel

मूल्य : ३.००

डा. डिल्ली रमण रेग्मी
कल्याणी रेग्मी स्मारक
पुस्तकालय
5227

मेहमानों से घर भरा था। जेठ की भीषण गर्मी और····घर की देख-भाल करने वाली केवल हरिमोहन की दादी ही थीं। वही सबके खाने-पीने और आराम की व्यवस्था कर रही थीं। न तो उनपर गर्मी का प्रभाव पड़ रहा था और न ही उमर की थकान या आलस्य था। तीसरे-चौथे दिन उठने-वाली लाल-पीली आँधियों ने उनके लिए काम और बढ़ा दिया था। फिर भी, उनके पैरों में गति थी और मन में उमंग। हाँ, कभी-कभी अपनापन दिखाने के लिए जब कोई महिला कह उठती—

"बउआ जी, आज बहूरानी होती तो रौनक और ही हो जाती," तब बउआ जी की उमंग भरी आँखों में पल भर में ही आँसू छलछला उठते। कहतीं, "अभागिन ने भोगा ही क्या था····मेरे एक बेटा था और वह तीन बालक मेरी गोद में छोड़कर चली गई···। इन बेचारों को क्या मालूम, कौन इनकी माँ··· कौन दादी···" धोती के पल्लू से आँसू पोंछकर बउआ जी इतना ही कह पातीं और फिर काम में लग जातीं।

हरिमोहन के पिता कृष्णमोहन उर्फ कृष्णा जी अपनी माँ को 'बउआ जी' कहकर सम्बोधित करते थे और उनकी सुनकर घर के सभी लोगों ने उन्हें 'बउआ जी' ही कहना आरम्भ कर दिया। कृष्ण जी की तीन सन्तानें थीं—हरिमोहन, राममोहन और बिटिया श्यामा। तीनों बच्चे बचपन में ही माँ की छाया में वंचित हो गए थे। और इन्हीं बउआ जी की ममता में पलते-बढ़ते रहे।

माँ के सम्बन्ध में तो वे इतना ही जानते हैं कि, बाबू जी के कमरे में एक सुन्दर-सी तस्वीर है। उसमें जो मूरत जड़ी है, वह माँ की है। चौड़े लाल पाड़ की साड़ी, माँग में सिन्दूर, माथे पर बड़ी सी बिंदी और बालों की पटियों में

विलप लगाए, मुस्कान की मुद्रा में लाल-लाल अधरों वाली कोई स्त्री है, जिसे सब माँ की तस्वीर कहते हैं।

हरिमोहन की माँ की यह तस्वीर इतनी सुन्दर है कि उससे सौन्दर्य बिखरता-सा प्रतीत होता है। दो फुट चौड़े और चार फुट लम्बे चौखटे में जड़े उस चित्र पर सलमे-सितारे का एक हार सदैव झिलमिलाता रहता है।

पहले इस चित्र को हरिमोहन घंटों निहारा करता था। धीरे-धीरे यह माँ का प्रतीक मात्र रह गया। घर आनेवाले अतिथियों को बउआ जी वह चित्र दिखलातीं, तो उनकी आँखों की कोरें नम होने लगतीं और वह कहतीं, "थी तो देवी से ही रूप-रंग वाली, पर मेरे किसना पर ऐसा जादू किया, कि वह लाख बार समझाने पर भी शादी को राजी न हुआ···अब बच्चों के लिए तो माँ हूँ तो मैं ही और दादी हूँ तो·····"

हरिमोहन की बहू के आने पर कृष्णा जी ने बहू पार्वती से कहा, "बेटी, बउआ जी के चरण-स्पर्श कर अपनी माँ को भी प्रणाम कर आओ।"

सुख-दुःख के मिश्रित आवेग से गद्गद बउआ जी काँपते हाथों पार्वती को उस चित्र के सम्मुख ले गईं। माथे का पल्ला थोड़ा ऊँचा करके पार्वती ने दोनों हाथ जोड़कर आदरपूर्वक सास की तस्वीर को प्रणाम किया। उसे देखकर पलभर के लिए पार्वती भी भावुक हो उठी थी। साथ ही, वह इतना अवश्य समझ गई कि ससुर को प्रसन्न रखने के लिए, उनका आशीर्वाद पाने के लिए क्या आवश्यक है। वह नित्य ही बउआ जी और ससुर के चरण-स्पर्श के बाद सास के चित्र के सम्मुख मस्तक नवाने लगी।

× × ×

धीरे-धीरे घर से मेहमान विदा होने लगे। उत्सव की धूम समाप्त हो चली थी। यों तो घर का सभी कार्य-व्यापार सामान्य होने लगा था, परन्तु नई बहू के घर में आ जाने पर वातावरण में एक उमंग सी व्याप्त हो गई। शान्त सा रहनेवाला साहू कृष्णमोहन उर्फ कृष्णा जी का वह भव्य प्रासाद उल्लास से जगमगाता-सा प्रतीत होता था।

पार्वती बड़े घर की बेटी थी और बड़े घर में ही बहू बनकर आई। अपने मायके में उसे पूरी स्वच्छन्दता थी और ससुराल में भी सब उसका मन रखते थे, मान रखते थे। अतः उसका अल्हड़पन वैसा ही बना रहा। उसके हँसने-हँसाने के स्वभाव के कारण तो सभी उसे बहुत चाहने लगे थे। पन्द्रह वर्ष की किशोरी पार्वती···उसके खाए-पिए शरीर की उठान आयु से अधिक ही जँचती। उसके कुन्दन से दमकते गोरे मुखमण्डल पर मीन-सी बड़ी-बड़ी चञ्चल आँखें अकस्मात् ही मन को खींच लेतीं।

बउआ जी कहतीं, "बेटी, जरा साड़ी बदल आ····" और पार्वती चन्द मिनटों में ही सज-सँवर कर तैयार। रतजगे के अवसर पर बउआ जी ने संकेत किया और पार्वती की उँगलियाँ ढोलक पर थाप देने लगीं। गाने, बजाने और नृत्य सभी में उसने कौशल और उत्साह दिखलाया। घर में सभी उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। बउआ जी उसके बालों में छिपाकर काजल का ढिठौना लगा देतीं और बहू की बलैयाँ लेतीं। हाँ, उसके पति हरिमोहन का स्वभाव गम्भीर था। पति की गम्भीरता ने पार्वती की वाचालता और अल्हड़ता पर मौन का पर्दा खींचना आरम्भ कर दिया।

एक दिन परिहास की मुद्रा में, कुछ एकान्त मिलने पर हरिमोहन ने पार्वती से बात करनी चाही। पार्वती ने सकुचाकर माथे का पल्ला और खींच लिया।

"भई हमें भी एक गीत सुना दो।"—पार्वती की कोमल कलाई पकड़ते हुए हरिमोहन ने छेड़ा।

"···· ····· ··· ··· ····"

"क्यों हमीं से रूठी हो ?"

"··· ···· ··· ···· ··· ···"

"कुछ तो कहो।"

"···· ···· ··· ···· ···· ··"

"अच्छा तो हम चले"—उठकर चल देने का उपक्रम करते हुए हरिमोहन ने कहा।

"सुनिए·····"—बहुत साहस जुटाकर पार्वती एक शब्द बोल पाई।

"हाँ ! हाँ····कहो, कहो।" कहते हुए हरिमोहन वहीं पड़ी आराम, कुर्सी में धँस गए।

"एक बात मानेंगे ?"—झिझकते हुए पार्वती बोली।

"हाँ भई, कुछ कहोगी भी।"

"सोमा को भी यहीं ले आएँगे।" कुछ आश्वस्त होते हुए किञ्चित् अधिकार और निर्णय की मुद्रा में पार्वती ने कहा।

"क्या··· ··· ····?"

"सोमा को···· ···· ···"

"··· ····· ···" प्रश्नसूचक मुद्रा में हरिमोहन पार्वती का चेहरा देखता रह गया। मन में उसने न जाने क्या-क्या कल्पनाएँ की थीं। लेकिन न प्यार····न मनुहार····। प्रथम वार्तालाप में ही उसकी नई-नवेली वधू पहेली सी बुझा रही थी। तनिक सावधान होते हुए वह कुर्सी में आगे खिसक आया और पास खड़ी हुई पार्वती का हाथ पकड़कर उसने उसे कुर्सी के हत्थे पर बैठा लिया। अभी तक उसकी समझ में ही नहीं आ रहा था, कौन सोमा···कैसी सोमा···किसकी सोमा····और पार्वती का तात्पर्य क्या है ? जिस नवोढ़ा वधू के मुख पर आत्म-समर्पण का भाव देखने को वह लालायित था, उसकी ओर स्वयं ही प्रश्न-भरी दृष्टि से देख रहा था।

"मेरी सहेली है न ! मेरे घर के सामनेवाली सोमा····उसी की बात तो कह रही हूँ।" सहज भाव से हँसते हुए पार्वती ने कहा।

"अच्छा ! अच्छा !! वह रामसहाय जी की लड़की ?"

"हाँ ! हाँ !! वह ही·····।" बच्चों की सी पुलकन पार्वती के मुख पर छा गई और आश्वस्त होती हुई वह बोली, "आपके जो मित्र हैं न ! सुशील-चन्द्र खद्दरधारी, उन्हीं से सोमा की शादी की बात कह आई हूँ।"

"तुमने तो पहले ही तय कर लिया, अब हम क्या कहें।" फिर कुछ सोचते और मुस्कराते हुए हरिमोहन ने कहा, "लेकिन पार्वती, यह क्या किया तुमने ? कहाँ तुम्हारी सहेली सोमा और कहाँ वह गांधीवादी सुशील····"

"आप हाँ कह दीजिये, फिर सब देखा जाएगा।"

"तुम तय कर आई तो हमारी भी हाँ हो गई, अब आगे तुम जानो।"

"सचमुच बहुत अच्छे हैं आप!"—पुलकित होकर पार्वती ने हरिमोहन पर एक दृष्टि डाली।

तभी बउआ जी की आवाज आई—"बेटी पार्वती, यहाँ तो आओ, देखो तुम्हारे यहाँ से कौन-कौन आए हैं।"

वह शीघ्र ही कमरे से बाहर आ गई। अपूर्व आनन्द का अनुभव करती हुई वह जल्द से जल्द घर पहुँचकर सोमा को उक्त सूचना देने को व्यग्र थी।

× × ×

पार्वती और सोमा के बीच बचपन से ही स्नेह रहा है। बचपन के खेलों में मिट्टी के घरौंदे बनाते हुए दोनों यहाँ तक सोचा करती थीं कि शादी भी एक ही जगह करेंगी या करेंगी ही नहीं। यों तो दोनों के स्वभाव में बहुत अन्तर है। हाँ, दिलों से समान हैं। पार्वती वाचाल, चञ्चल और हँसमुख! सोमा मितभाषी, गम्भीर और शान्त।

विवाह के पहले ही पार्वती ने पिता से कह दिया था कि ऐसी जगह वर ढूँढ़ना, जहाँ सोमा की भी शादी हो सके। पार्वती के पिता चौधरी मिट्ठन लाल परेशान थे। ऐसा वर और घर कैसे ढूँढ़ें? उनका लाखों का कारोबार था और सन्तान के नाम पर इकलौती बेटी पार्वती। पार्वती का विवाह वह धूम-धाम से करना चाहते थे। सोमा के पिता, रामसहाय; अच्छे खाते-पीते व्यक्तियों में से थे, परन्तु सोमा के विवाह में अधिक खर्च कर सकने की उनकी स्थिति नहीं थी। सोमा उनकी ज्येष्ठ संतान थी और उससे छोटे चार लड़के और दो लड़कियाँ और थीं।

हरिमोहन के विवाह की चर्चा चली थी, तो उसके पिता कृष्णा जी ने कहा था, "हरि! तुम श्यामा और सुशील को साथ लेकर चले जाओ और लड़की पसन्द कर आओ।"

हरि, श्यामा और सुशील तीनों पार्वती को देखने मिट्ठनलाल के यहाँ पहुँचे। यों तो उनके यहाँ घरेलू व्यवस्था के लिए नौकर-चाकर काफी थे, परन्तु पार्वती की प्रसन्नता के लिए वह सोमा का अपने घर पर रहना पसन्द करते थे। यही नहीं, अपनी बेटी की ही तरह सोमा को चाहने भी लगे थे। सोमा भी उस घर की बेटी हो गई थी, इसलिए घर के व्यक्तियों में एकमात्र सोमा ही अतिथियों की आवभगत कर रही थी।

हरिमोहन को पार्वती देखते ही पसन्द आ गई। वह अपने विवाह की कल्पनाओं में डूबा था। स्वागत-सत्कार में कमी न हो, इस बात की सोमा को विशेष चिन्ता थी। सोमा की सौम्य मुख-मुद्रा और काम के प्रति निष्ठा देखकर सुशील बड़े आकर्षण से उसे देख रहे थे। पार्वती ने कनखियों से यह देखा और देखकर उनका भाव समझ लिया। लेकिन, सोमा को इस सबका कि कोई उसे देख रहा है, ध्यान भी न था।

पार्वती के पिता ने शगुन का तिलक कर दिया और तीनों को भेंट में मिठाई, कपड़े और चाँदी के बर्तन दिए। साथ ही राममोहन को साथ न लाने पर दुःख प्रकट किया और उसके लिए भी भेंट का सामान अलग से बँधवा दिया।

उस दिन अतिथियों के विदा होते ही पार्वती ने सोमा को "छेड़ा क्यों री, वो कैसे लगे ?"

"कौन, वह जीजा जी ?"

"धत् पगली, तेरे नहीं, मेरे जीजा जी।"

"पारो तुम पगला गई हो, क्या बहकी-बहकी बातें कर रही हो।"

"नहीं सुमी, सच कह रही हूँ, मुझे वह सुशीलचन्द्र जी बहुत पसन्द आए।"

"शगुन तो दूसरे को दिया गया है·····दो से विवाह करने का इरादा है ?"

"नहीं रे ! अपना वचन तो याद करो, कहा था न, साथ ही ससुराल जाएँगे ?"

"अच्छा, तो यह बात है·····।"

"हाँ, बस यही है मुझे तेरे लिए वह नेताजी बहुत पसन्द आए।"

"ओह ! तो मुझे पहले ही इशारा कर देतीं, जरा मैं भी ध्यान से देखती।"

"अच्छा ! तो मेरी पसन्द अब दूसरी हो गई।"

"नहीं, यह बात नहीं। जो तुम पसन्द करोगी उसे तो भगवान्....."

"बस.....बस।"

और पार्वती अपनी कोमल उँगलियों से सोमा का मुँह बन्दकर उससे कसकर लिपट गई। भावावेश में दोनों की आँखो से आँसू निकल आए। कुछ संयत होने पर पार्वती ने कहा था, "तुझे साथ ले जाकर ही मानूँगी।"

विवाह के बाद हरिमोहन की सहज स्वीकृति पाकर पार्वती ने ज्यादा कुछ पूछा ही नहीं।

● ● ●

: २ :

ससुराल से पहली बार पार्वती लौटी, तो बहुत प्रसन्न थी। कुशल-समाचार पूछने के बाद उसने पिता से कहा, कि सोमा की शादी भी वहीं कर दीजिए सुशील जी के साथ।

चौधरी मिट्ठनलाल कुछ असमंजस में दिखलाई पड़े। उन्हें यही उलझन थी कि सुशील बिना माँ-बाप, घर-परिवार का लड़का है। कृष्णा जी के यहाँ रहकर ही पढ़ाई की है, और नौकरी भी करेगा तो दो सौ या तीन-सौ की। किस प्रकार रामसहाय से चर्चा करें।

उसी घर में उनकी अपनी बेटी पार्वती की शादी हुई है। सोमा बचपन से उसके साथ रही है·····परन्तु पार्वती उस घर की मालकिन होगी·····। सुशील उस घर का आश्रित है। एक कोमल भावना उनके मन को छू गई कि सोमा बेटी को वहाँ दबकर रहना पड़ेगा। कहीं ऐसा न हो, मैं रामसहाय से चर्चा करूँ और वह इसे अपमान समझ बैठें।

एक बार तो उनके मन में आया कि इस मामले को चुपचाप टाल दें। झंझट में न पड़ना ही अच्छा है। बाद में कोई ऊँच-नीच हो गई तो जिम्मेदारी उन्हीं पर आएगी। शादी-ब्याह के मामले बड़े नाजुक होते हैं। एक स्वार्थ भी उभर आया·····सुशील की नौकरी लगने से पहले विवाह का सारा खर्च भी साहू साहब के मत्थे पड़ेगा। नए-नए सम्बन्ध के सम्मान में वह कुछ कहेंगे नहीं और सारा व्यय वहन करेंगे। सुशील पढ़ाई पूरी करके काम में लग जाए, तभी विवाह करना ठीक होगा।

ऐसी ही अनेक बातें चौधरी मिट्ठनलाल सोचते रहे और एक-दो दिन उन्होंने यों ही बात को टाल दिया। उधर पार्वती व्यग्र थी। पिता का मौन उसे सह्य न हुआ। पिता की ओर से उदासीनता देखकर पार्वती स्वयं सोमा के यहाँ गई।

बहुमूल्य आभूषणों और झिलमिलाते वस्त्रों में पार्वती अनुपम सुन्दरी दिख रही थी। प्रसन्न वदन पार्वती का सोमा के यहाँ अच्छा स्वागत हुआ। खान-पान की औपचारिकता के बाद उसने सोमा के माता-पिता के सम्मुख सोमा के विवाह का प्रस्ताव रखा।

पार्वती के विवाह की धूम-धाम और ससुराल के वैभव की चमक-दमक अभी तक सबके मन पर अंकित थी। वे दोनों पहले से ही पार्वती की आत्मीयता और भोलेपन पर मुग्ध थे। इस समय बेटी के विवाह का प्रस्ताव लेकर आई पार्वती उनके लिए और भी सम्माननीया हो गई। घर के सभी प्राणी पार्वती के स्नेह से गद्गद थे।

रामसहाय ने तुरन्त ही इस सम्बन्ध के लिए स्वीकृति दे दी। वह सोमा जैसी सुशील कन्या के लिए सुयोग्य वर चाहते थे। उन्हें खानदान और जात-

बिरादरी की चिन्ता न थी। दूध का जला छाछ भी फूँक-फूँककर पीता है। अपनी बहिन लक्ष्मी का विवाह उन्होंने बड़ा घर देखकर ही किया था। विलास-प्रिय बहनोई ने मदिरा और जुए में सब फूँक दिया और लक्ष्मी यहाँ आकर भाई के आसरे जीवन काट रही है। उनका विचार था कि लड़का योग्य और समझदार होगा, तो जीवन शान्ति और सन्तोष से व्यतीत हो जाएगा। इस प्रकार बातों-ही बातों में कृष्णा जी की स्वीकृति लेकर सोमा का विवाह सुशील-चन्द्र से निश्चित कर दिया गया।

सुशील इस वर्ष एम० ए० कर लेगा। सोमा सुशील को पसन्द भी थी, तिस पर पितृतुल्य कृष्णा जी की बात उसके लिए शिरोधार्य थी।

पन्द्रह दिन बाद ही कृष्णा जी सोमा को भी बहू बनाकर ले आए। बउआ जी का कहना था, एक साल में दो बहुएँ एक ही दरवाजे से घर में नहीं लाई जाती, अतः वधू सोमा का बैठक के द्वार से स्वागत किया गया।

× × × ×

संयोग की ही बात थी, बगरौली गाँव के जमींदार सूरजमल का बेटा सुशीलचन्द्र ने अपने पिता के अभिन्न मित्र साहू साहब कृष्णा जी के आश्रय में पढ़ा-लिखा, उनके बेटे हरिमोहन के साथ ही पला और बड़ा हुआ था। सुशीलचन्द्र का हृदय बहुत कोमल था। किसानों पर अत्याचार करके लगान वसूल करना उसे अत्यन्त जघन्य कृत्य लगता था। उसके पिता की मृत्यु के पश्चात् कृष्णा जी ही उसका सब काम सँभाले हुए थे। अब तो वह समझदार हो गया था। कार्य सँभाल लेने योग्य था, फिर भी उसे जमींदारी के काम में कोई रुचि न थी। समय-समय पर कृष्णा जी संकेत करते थे, "बेटे, काम देखना शुरू करो। तुम्हें ही सब कुछ सँभालना है।" सुशील इस चर्चा को प्रायः पढ़ाई के बहाने टाल जाता था। मगर, एक दिन उसने अपना मन्तव्य व्यक्त कर ही दिया, "काका जी, यह सब मुझसे नहीं सँभलेगा।"

"बेटा, अपना काम तो तुम्हें सँभालना ही है। फिर मैं तो अभी हूँ ही, घबराते क्यों हो?"

"नहीं काका जी, मैं इसे बेच डालूँगा और एक मकान खरीदकर यहीं शहर में ही पढ़ने-पढ़ाने का काम करता रहूँगा।"

"मकान की चिन्ता क्यों करते हो बेटे! इतनी लम्बी चौड़ी हवेली है, आराम से यहीं रहो।"

"नहीं काका जी, बात यह है कि नीमवाली गली में सामने जो मकान है, वह बिक रहा है। यहाँ से पास भी पड़ता है। उसे ले लिया जाय, तो अच्छा रहेगा।"

"तुम्हारी इच्छा उस मकान को खरीदने की है, तो उसका प्रबन्ध भी हो जाएगा।"

"काका जी, बात यह है कि मैं गाँववाली जमीन बेच देना चाहता हूँ"

"उस सबका इन्तजाम तो मैं कर ही रहा हूँ, लेकिन अपने स्वर्गवासी मित्र की आत्मा को कष्ट नहीं देना चाहता। उसके लिए तुम क्यों चिन्तित हो?"

"नहीं! नहीं!! काका जी, आप ऐसा न सोचें। आपने मेरे मन की बात कह दी। आप ही इसे ले लें और मुझे वह मकान खरिदवा दें। आप इस बात की चिन्ता न करें कि लोग क्या कहेंगे।"

सुशील के बहुत आग्रह करने के बाद कृष्णा जी ने बगरौली की सीर के कागज अपने नाम करा लिए, अपनी सम्पत्ति बढ़ा ली और विनिमय में पन्द्रह हजार रुपए सुशील के नाम निकले। दस हजार में उन्होंने उसे मकान खरिदवा दिया और पाँच हजार की धनराशि बैंक में सुशील के नाम डाल दी।

सुशील चाहता था कि अपने मकान में चला जाए और जिस प्रकार भी हो, अपना गुजर-बसर स्वयं ही करे। विवाह हो जाने के बाद वह अपना और अपनी पत्नी का भार काका जी पर नहीं डालना चाहता था, परन्तु हरि के साथ उसकी मित्रता और उसके स्वभाव पर मुग्ध कृष्णा जी उसे अपने पास से जाने ही नहीं देना चाहते थे। कृष्णा जी हरि और राम के साथ उस भी अपना तीसरा बेटा मानते थे।

सुशील के गम्भीर स्वभाव और प्रखर बुद्धि पर कृष्णा जी को बहुत विश्वास था। बहुत से कामों में वह हरि और राम से न पूछकर सुशील से ही सलाह-

मशविरा करते थे। श्यामा उनकी अकेली बेटी थी। हरि और राम दोनों ही हास-परिहास में श्यामा की चोटी खींच देते, लड़ते-झगड़ते या चिढ़ा देते थे, परन्तु बड़े भाई का-सा संरक्षण उसे सुशील से ही मिलता था। हरि और सुशील के विवाह पर श्यामा बहुत प्रसन्न थी। उसकी दो भाभियाँ एक साथ आईं, प्रसन्न क्यों न होती।

सुशील का विवाह कृष्णा जी ने बड़ी सादगी के साथ किया और लोगों के सामने एक आदर्श रखा। केवल ग्यारह बाराती ले गए और लड़की के पिता से दान-दहेज कुछ न लिया। सोमा के पिता को कुछ दुःख अवश्य हुआ; क्योंकि उनके यहाँ यह पहली कन्या का विवाह था। सुशील के सीधे और सरल स्वभाव से वह परिचित हो चुके थे। विवाह की आदर्शवादिता के पीछे सुशील के विचार काम कर रहे हैं, यह जानकर उन्होंने आनाकानी न की। जैसा कहा गया, वैसा ही मान लिया।

× × × ×

बउआ जी अपनी हरी-भरी बगिया देखकर फूली न समातीं। पार्वती, सोमा और श्यामा तीनों ही हँसती-बोलती रहतीं। एक दिन श्यामा ने पिता से बगरौली के बाग में पिकनिक पर जाने की अनुमति चाही। पहले तो कृष्णा जी घबराए, अभी गर्मी काफी पड़ रही है। ये लोग वहाँ जाकर दिनभर परेशान होंगे। परन्तु उस दिन मौसम कुछ अच्छा था। आषाढ़ शुरू हो रहा था। थोड़ी बहुत बूँदाबाँदी हो जाने से गर्मी कुछ कम हो गई थी। अतः उन्होंने रामसुखा और छोटेलाल दोनों नौकरों को तरह-तरह की हिदायतें देकर साथ जाने का प्रबन्ध करा दिया।

पिकनिक की बात सुनकर राममोहन भी बहुत प्रसन्न था। वह चाहता था कि उसके दोस्तों की मंडली भी जाय। सबके साथ सीटियाँ बजाते, गाते और झूमते हुए पिकनिक का आनन्द लिया जाय। घर की दो नई-नवेली बहुएँ साथ जा रही थीं। अतः राम को मित्रों को साथ ले जाने की आज्ञा न मिली।

उस दिन सुबह जल्दी उठकर बउआ जी ने खाना और नाश्ता तैयार करा दिया। दोनों नौकरों ने भली भाँति सब सामान लगाकर रख लिया। सभी लोग तैयार हो गए। हाँ, सैलानियों का सा हुलिया बनाए राममोहन अपने साथ मुँह से बजानेवाला बाजा (माउथ ऑरगन) और कैमरा लेना न भूला। कृष्णा जी जीप का इन्तजाम कराने को कह रहे थे, परन्तु सुशील और हरि की इच्छा डनलप के पहियोंवाली बैलगाड़ी पर ही जाने की थी। उस गाड़ी को वे लोग 'डनलप' कहकर ही सम्बोधित करते थे।

डनलप में गद्दा, चादर इत्यादि बिछाकर बिछावन तैयार कर दिया गया और वे छह व्यक्ति तीन-तीन की पंक्ति में आमने-सामने बैठ गए। एक ओर राम, हरि और सुशील थे। दूसरी ओर श्यामा, पार्वती और सोमा बैठी थीं। सोमा यों तो प्रसन्न-मुख रहती, परन्तु हरि और सुशील के सामने रहने पर वह कम ही बोलती थी। इस समय भी वह डनलप के नीचे भागती हुई सड़क को देख रही थी। सड़क के दोनों ओर जो झाड़ियाँ फैली हुई थीं, उनमें दूर तक ढक्के के झुंड दिखलाई दे रहे थे। कहीं-कहीं किसी सूखे गड्ढे में मटमैला पानी दिखाई दे जाता।

सुबह के नीले स्वच्छ आकाश में बादलों के सफेद और सुरमई टुकड़े भले लग रहे थे। पक्षियों का चहचहाना आरम्भ हो गया था। मनमोहक पवन चल रहा था। न जाने क्यों, सबके साथ बैठे हुए भी सोमा अपने को अकेली अनुभव कर रही थी। उसकी उदासीनता को राम की एक सीटी ने मुस्कान से भर दिया। राम डनलप की रेलिंग पर बैठा था और उसका ध्यान सोमा की ओर ही था। हरि और पार्वती का कनखियों से चलता प्रेम-व्यापार भी उसने देख लिया था। सोमा और सुशील का अलग-अलग भावुक हो जाना उसे कहीं चुभ रहा था। अपनेपन से छेड़ते हुए राम ने सोमा की विचार-तन्द्रा भंग की, "भाभी जान, कहाँ खो गईं।" और सोमा जैसे कहीं पास ही घटे की ध्वनि सुनकर चौंक उठी। श्यामा बोली, "भैया, कोई फिल्मी तराना छेड़ दो, तो भाभी का मन भी लगे। भला ऐसे क्या जी बहलेगा।"

"फिल्मी तराने की बच्ची, तू जरूर बीच में कूदेगी। हम तो सोच रहे थे कि आज भी भाभी से कजरी सुनी जाएगी।"

राम और श्यामा की नोक-झोंक से हरि और पार्वती तनिक सचेत हो गए।

हरि बोला, "यार क्या कजरी-वजरी लगाई, आओ फल्लास हो जाए।" और उसने कुर्ते की जेब से ताश की गड्डी निकाली। श्यामा ने जीभ निकाल-कर राम को चिढ़ा दिया कि लो सुनो कजरी।

लेकिन 'फल्लास' की बात श्यामा को भी अच्छी न लगी, बोली—"लो भैया, ये भुट्टे खाते चलो।" और उसने सामने रखी डलिया में से एक-एक भुट्टा सबको देना आरम्भ किया और समझौते की सी आवाज में कहा, "बड़े भैया, मील भर तो हम लोग आ गए। तीन मील का रास्ता और है। सीधी सी बात है; खेलने का मन है तो 'गन' खेलो; नहीं तो तुम्हारा ताश-वाश नहीं होगा।"

श्यामा का गन का प्रस्ताव पास हो गया। गन के पत्ते बँटने लगे। श्यामा, सोमा और हरि एक ओर रहे, सुशील, राम और पार्वती दूसरी ओर। सोमा हरि से थोड़ा झिझक रही थी, पर श्यामा ने उसे सचेत कर दिया, "भाभी, बड़ी भाभी की तरह खेलना; कहीं हरि भैया से शरमाकर बाजी का पटरा न कर दो।"

"अजी, मैं कहूँ आज कहाँ की शरम आ गई। जब ये हमारे घर गए थे तो 'जीजा जी', 'जीजा जी' कहकर सबसे ज्यादा इनकी खातिर हो रही थी और अब इनके घर आ गई तो शरमाने लगी।" पार्वती ने हल्के से सोमा को चुटकी काटी।

"भाभी, परसों मैंने सोमा को बतलाया कि हरि मुझसे एक साल बड़ा है; तो यह हरि को अपना जेठ मानकर शरमाने लगी है।" सुशील की आवाज थी।

"न बाबा, हम तो देवर ही भले। सोमा जी, हमें जेठ मत समझना।" एक स्नेह-पगी दृष्टि सोमा पर डालकर हरिमोहन ने पार्वती की देखा।

"सोमा जी, सोमा जी, बोलते हैं। देवर बनना है तो भाभी मुँह से न निकला।" बड़ी तीखी दृष्टि से पार्वती ने हरिमोहन को घूरा।

हरिमोहन समझ गया कि मुस्कराकर सोमा से बोलना भी पार्वती को अच्छा नहीं लगा। तभी राम बोल पड़ा, "सोमा भाभी, क्यों मेरी बीबी के लिए काँटे बो रही हो, इतना शरमाकर इतना लजाकर। तुम हरि भैया से पर्दा करोगी, तो उसे भी करना पड़ेगा। सुशील भैया तो खुद ही नहीं बोलते, मैं तो बाबा हरी भैया से भी पर्दा नहीं कराऊँगा।"

सोमा यह सुनकर मुस्कारा उठी और तुरत कह बैठी, "हाँ, बड़े सीधे हैं न ये। राम भैया, इनसे ही ज्यादा बचाना। सीधे लोग बड़े घुन्ने होते हैं।" बड़ी देर बाद एक स्नेह भरी दृष्टि सोमा ने सुशील पर डाली।

"आहा, क्या बात कही है···सोमा···भाभी! आपने मेरे मन की बात कह दी"—पहला आधा वाक्य अटक-अटककर बोलते हुए हरि ने सुशील की ओर देखा।

"देखा न भाभी, सीधे तो घुन्ने हैं ही, अब टेढ़ों की साँठ-गाँठ होने लगी।" सुशील ने पार्वती को लक्ष्य कर कहा।

पार्वती मन-ही-मन खिन्न होने लगी। उसे हरिमोहन के मुँह से न तो 'सोमा जी' और न ही 'सोमा भाभी' शब्द अच्छे लगे। उसके मन में एक दर्प-सा आ गया कि वह····चौधरी मिट्ठनलाल की बेटी और साहू कृष्णा जी की बड़ी पुत्रवधू है····। यह सोमा उसी की सहेली है····उसी के बल पर इस घर की ड्योढ़ी चढ़ी है।····ब्याही गरीब को···ले-दे के उसके पास एक मकान है···तो क्या हुआ····सुशील इतने दिन उसी के ससुर के टुकड़ों पर पला है··· मकान भी उन्हीं लोगों की मेहरबानी से मिला है····। और कोई होता, तो स्कूल-कालेज की फीस में ही जमीन गिरवी रखवा लेता···कैसा सीधा गऊ-सा बना रहता है।····और···यह सोमा····उसी के बलपर रानी बनी है। चार दिन की छोकरी····सुन्दर भी तो मुझसे ज्यादा नहीं···ये भी रँगीली दृष्टि डालेंगे····राम भी मन हाथों में लेगा····श्यामा भी, हूँ···यह सोमा है, सोमा ही रहेगी····।

पार्वती के चेहरे की पल-पल में परिवर्तित भाव-भंगिमा देखकर सोमा समझ रही थी कि बहुत स्नेह करने पर भी पार्वती उसका अधिक सम्मान

किया जाना सहन नहीं कर पा रही है। सोमा का सहज 'सोमा' रूप ही उसे सहनीय होगा। उसने बहुत ही विनीत होकर हरि से कहा,—"जीजा जी, आप मुझे सोमा ही कहकर पुकारें तो अच्छा होगा।"

"अच्छा भाई, सोमा ही सही।" कहते हुए हरि ने एक ऐसी दृष्टि से सोमा को देखा जिसमें सरसता थी, प्रस्ताव की स्वीकृति का बोध था और थी सोमा के प्रति कृतज्ञता। मानो 'जीजा जी' कहकर सोमा ने किसी उलझती हुई परिस्थिति से उसे बचा लिया हो। ताश की पत्ती बाँटी जाने लगी। हल्के-हल्के झटके खाते हुए डनलप में मस्त होकर खेल चलने लगा।

छोटे लाल मन्द गति से गाड़ी हाँकता इन लोगों की बातों में रस भी ले रहा था। इसलिए सड़क पर पड़े हुए किसी पत्थर के टुकड़े के कारण झटका लगता था। किसी गढ्डे में गाड़ी का पहिया पड़ जाता तो झटके लगने से ताश के पत्ते इधर-उधर जा गिरते और इन लोगों के खेल में कुछ व्यतिक्रम हो जाता था। कभी-कभी ऐसा होता कि बीच में डाला हुआ पत्ता हवा के झोंके या गाड़ी के झटके से दूर जा गिरता तो राम या हरि कोई-न-कोई छोटेलाल को चेतावनी देने लगता—"अरे छोटेलाल, जरा सँभाल के हांको न गाड़ी। हम लोगों की बातें सुनने में मस्त रहते हो, हमारा खेल बिगड़ जाता है।"

"अच्छा छोटे बाबू, अब खेल नहीं बिगड़ेगा···खेलो! खेलो!!····बड़े भैया, निसाखातिर रहो! अब की ऐसी हाँक देवैं कि तैरती हंसिनी सी चलेगी हमारी डनलप," कहते हुए छोटेलाल ने बैलों की पूँछ पकड़कर ऐंठ दी। कभी वह अपने पैर से बैल के पेट में ऐंड़ लगाकर और कभी बैलों को नाथने वाली रस्सी का छोर पकड़कर दायें बाएँ दोनों ओर घुमाकर बैलों की पीठ पर रस्सी मारता और 'हुर्रे'···'हुर्रे' कहकर उन्हें दौड़ाने लगता। उसकी इन हरकतों और गाड़ी की चाल तेज करने की शरारत पर सभी हँसने लगते। जब छोटेलाल के सिर से कौशल-प्रदर्शन का भूत उतर जाता तो गाड़ी का आनन्द लेकर ताश का खेल दोबारा आरम्भ कर देते। इस अन्तराल में पिछली बाजी के बेगम, बादशाह, गुलाम और इक्कों की चर्चा कर-करके सभी अपनी-अपनी जीत की डींगे मारते थे।

बगरौली तक का रास्ता यों ही देखते-देखते कट गया। फार्म पर इन लोगों के पहुँचते ही चहल-पहल मच गई। वहाँ के सभी कर्मचारी अपने स्वामी के परिवार को आया देखकर प्रसन्न हो उठे और अगवानी तथा सेवा-सत्कार के लिए दौड़ पड़े। खाने-पीने का काफी सामान ये लोग अपने साथ ही लाए थे, फिर भी, फार्म के नौकरों ने कुछ और ही ढंग की व्यवस्था कर डाली।

एक बड़े से पेड़ के नीचे कंडों का आँवाँ बनाया। इस आँवें की गर्म बालू में बाटियाँ बनाने के लिए आटे की लोइयाँ बनाकर दबा दीं। एक बड़ी हाँडी में उड़द की दाल पकने को रख दी। और दो आदमी राजस्थानी ढंग का चूरमा बनाने में जुट गए।

फार्म के मैनेजर ने पके हुए आम तुड़वाए और गाँव से एक पतीली मलाई-दार दूध मँगवाकर, इन सबसे कलेवा करने का अनुरोध किया। आम और दूध का अल्पाहार लेने के बाद, ट्यूबवेल के हौज में सबने नहाकर अपनी इस यात्रा की थकान मिटाई। स्नान आदि कार्यक्रम में इन लोगों को एक-दो घंटे लग ही गए। इस बीच भोजन भी तैयार हो गया था। लगभग दो बजे दाल-बाटी और चूरमा खाकर डेरे पर आराम किया। आराम क्या किया, कविता और शेरो-शायरी का दौर चलता रहा और हास-परिहास होता रहा।

दिन भर आनन्द में कटा। हाँ, आम की बगिया में अकस्मात् सोमा के मन में यह विचार आया, यदि सुशील जमीन न बेच देते तो आज वही इसकी स्वामिनी होती। सुशील ने एक दिन सोमा को बगरौली की सीर बेच देने की बात सुनाकर कह दिया था—"मामा, काका जी के मुझ पर बहुत एहसान हैं। कभी ऐसा न करना, जिससे उन्हें दुःख पहुँचे। मेरे लिए तो माता, पिता, चाचा, सब कुछ वही हैं और बउआ जी को तो तुम स्वयं ही परख लोगी।"

सुशील का संकेत भी सोमा के लिए पर्याप्त होता, फिर स्पष्ट निर्देश का उल्लंघन तो वह कल्पना में भी न करेगी, जिससे सुशील को दुःख हो। अतः इस समय भी उसने मन की बात होंठों पर न आने दी। इस आनन्द-

यात्रा में राम विशेष प्रसन्न था। उसने दोनों भाभियों की तरह-तरह की मुद्राओं में चित्र लिए और श्यामा के भी। श्यामा भी प्रसन्न थी।

× × ×

इस घर में आने के बाद सोमा ने देखा कि किसी भी अवसर पर उसका अतिरिक्त मान-सम्मान होना पार्वती को अच्छा नहीं लगता और आज के वार्तालाप ने तो स्पष्ट कर दिया कि हरि के व्यवहार और क्रियाकलाप पर पार्वती की कड़ी नजर रहती है। भले ही परिहास के लिए हो, हरि का किसी ओर तनिक भी झुकाव पार्वती को असह्य है।

पार्वती इकलौती सन्तान होने के कारण अपने घर अपनी जिद मनवाती थी और यहाँ भी उसमें एकाधिकार की भावना है। इन भावनाओं से सोमा को टकराने का प्रश्न ही नहीं है। सोमा तो उनकी सखी होने के साथ ही शुभ-चिन्तक भी रही है। अतः पार्वती की इच्छा के सम्मुख अपनी इच्छा का परित्याग कर देना उसका स्वभाव सा बन गया है। इसके लिए उसे प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह अपने भाई-बहिनों में भी सबसे बड़ी है, अतः उसके व्यवहार में गम्भीरता और व्यक्तित्व में परिपक्वता है।

मित्रता का इससे अच्छा उदाहरण सोमा को क्या मिलता जो पार्वती ने उसके सामने रखा था। कल्पना की अपेक्षा वास्तविक स्थिति कितनी कटु हो जाती है, यह उसने यहीं आकर अनुभव किया।

कृष्णा जी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और व्यवहार में भी मर्यादा का उन्हें विशेष ध्यान है। दोनों बहुओं को वह बहुत चाहते हैं। बहुएँ दस-पन्द्रह दिन भी मायके जाकर रहें, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता। अपनी पत्नी के दिवंगत हो जाने के चौदह वर्षों बाद, उन्हें घर में यह रौनक और चहल-पहल दिखाई दी है, उसे वह आँखों से ओझल नहीं होने देना चाहते। त्यौहार या किसी विशेष पर्व पर जब मैके से बुलावा आता, तो वह बहुओं को बिदा कर देते, किन्तु शाम होते ही वह राम और छोटेलाल को उन्हें बुलाने के लिए भेज देते।

और इस प्रकार पार्वती और सोमा को पुनः लौट आना पड़ता था। वे भी अपने ससुर को अप्रसन्न नहीं देखना चाहती थीं।

× × ×

राम इस वर्ष बी० ए० में पढ़ रहा था। अगस्त समाप्त होते ही वह अध्ययन में जुट गया। उधर श्यामा के कालेज में भी पढ़ाई आरम्भ हो चुकी थी, परन्तु पढ़ने के नाम से ही श्यामा का मन उद्विग्न हो उठता। राम और श्यामा की उम्र में केवल डेढ़ वर्ष का अन्तर था। श्यामा दो बार टाइफाइड से पीड़ित हो चुकी थी। इस कारण उसके अध्ययन में व्यवधान आते रहे। इस वर्ष वह दसवीं कक्षा में ही थी। राम से कई दर्जे पीछे रह जाना उसे बुरा लगता था और यही कारण था कि पढ़ाई के नाम पर राम उसे प्रायः चिढ़ाया करता।

हरि इंटर में फेल हो जाने पर कई वर्ष पूर्व पढ़ाई छोड़ चुका था। यदि पढ़ाई न छोड़ता और निरन्तर पास होता रहता, तो वह सुशील के साथ इस वर्ष एम० ए० अन्तिम वर्ष में पढ़ रहा होता। लेकिन उसे अधिक पढ़कर करना भी क्या था? साहू साहब के यहाँ लेन-देन का धन्धा काफी फैला हुआ है, गाँव की जमीन और फार्म अलग से।

कृष्णा जी धीरे-धीरे हरि को काम सौंपने लगे थे, और हरि ने भी काफी कुछ समझकर काम शुरू कर दिया। कृष्णा जी राम के बारे में कहते कि राम को भी घर के धन्धे में ही लगना है। पढ़ने का मन है तो पढ़ ले।

अध्ययन में सुशील की अधिक रुचि देखकर उन्होंने उसे पढ़ने के लिए सदैव ही यथासम्भव सुविधाएँ दीं। सुशील ने जब भी नौकरी करने की बात उठाई, तभी वह समझाते, "बेटे, नौकरी में तुम्हें क्या मिलेगा?"

सुशील सात्विक वृत्तिवाला नवयुवक था। अध्ययन और अध्यापन ही उसे विशेष प्रिय थे। अतः उसने मन-ही-मन अध्यापन कार्य अपनाने का विचार किया। वह यही सोचा करता कि एम० ए० पास करके यहीं किसी कालेज में अध्यापक हो जाय। और, उसने अर्थशास्त्र में प्रथम श्रेणी में एम० ए० पास कर लिया। राम बी०ए० में पास तो हो गया, परन्तु उसे तृतीय श्रेणी ही

मिली। श्यामा अत्यन्त प्रसन्न थी। वह द्वितीय श्रेणी में हाईस्कूल पास हो गई थी।

● ● ●

: ३ :

पूरा एक साल बीत गया। धीरे-धीरे वह मोहक वातावरण पुराना हो उठा। बचपन से ही हठी पार्वती को बउआ जी और ससुर का बहुत स्नेह मिला, अतः उसके स्वभाव में कोई परिवर्तन न आया, परन्तु सोमा से वह कुछ खिंची-खिंची सी रहने लगी।

सोमा पार्वती के समान सुंदर न थी। हाँ, उनके शील-स्वभाव और उसकी कार्यदक्षता ने उसके मुख पर जो सौम्य आभा ला दी थी, उससे उसका सौन्दर्य कुछ बढ़ ही गया और चेहरा बहुत आकर्षक लगने लगा। त्यौहारों पर, साहू साहब इन दोनों के लिए समान रूप से वस्त्राभूषण बनवाते थे। फिर भी सोमा को बनने-संवरने का उतना लोभ नहीं था। उसके स्वभाव में तो गम्भीरता आती जा रही थी। उसे किसी वस्तु का अभाव नहीं महसूस होता था। हाँ, पार्वती के परिवर्तित होते हुए स्वभाव से वह समझ रही थी कि यहाँ अपने को संयत रखकर ही जीवन अच्छा बीत सकता है।

सुशील का अभी कोई निजी धन्धा न होने से वह और सोमा कृष्णा जी के आश्रित ही थे। कभी-कभी यह भावना सोमा को व्यग्र कर देती थी। किसी से कुछ कहने-सुनने का प्रश्न ही नहीं था। अपनी भावनाओं को संयत करके वह

गम्भीरतापूर्वक अपना दायित्व निभा रही थी। अवकाश के क्षणों में हरि अपने कमरे में जाता, पार्वती के साथ उसके हास-परिहास की मद्धिम ध्वनियाँ सोमा के कानों से अनायास ही जा टकरातीं। सोमा के लिए तो ऐसे क्षण प्रायः अलभ्य ही रहे। कमरे में आकर भी सुशील सोमा से विशेष बात नहीं कर पाता था। उसे प्रायः पढ़ाई की चिन्ता रहती। अर्थशास्त्र-जैसे गूढ़ विषय में अच्छी श्रेणी पा जाने का लक्ष्य उसके सामने था। अवकाश मिलता भी, तो वह काका जी की सेवा में व्यतीत कर देता और जब पढ़ने बैठता, तो दो-तीन घंटे तो उसे सिर उठाने का भी होश न रहता। ऐसी स्थिति में सोमा स्वयं को घर के कामों में अधिक-से-अधिक व्यस्त रखती। और वह भी स्वयं को अपना अधिकांश समय बउआ जी के साथ रहकर बिता देती। उनके साथ ही घर-गृहस्थी के काम में लगी रहती। कभी-कभी वह उनके आग्रह पर उन्हें 'रामचरित मानस' सुनाया करती। उन्हें तनीक सा भी कष्ट होने पर वह उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाती थी।

इधर कुछ दिनों से हरिमोहन का कमरा भी शान्त-सा रहने लगा। पहले सुनाई पड़नेवाली हास-परिहास की खनक मानों मौन में बदलती जा रही थी। सुशील के एम. ए. पास कर लेने पर सोमा सन्तोष का अनुभव करने लगी थी, परन्तु उसके प्रति पार्वती के व्यवहार में झुंझलाहट मालूम देती थी। पार्वती की उलझन सोमा से छिपी न रही।

एक दिन अपराह्न में चार बजे सोकर उठने के बाद पार्वती कमरे से बाहर आई। सोमा बउआ जी के साथ तीसरे पहर के जलपान के लिए समोसे बनवा रही थी। पार्वती का चेहरा देखते ही उसका हृदय उद्वेलित हो उठा। सोमा ने पूछा, "पारो, तुम्हारी तबीयत तो ठीक है न!"

"....."

"क्या बात है पारो, बोलती क्यों नहीं? सिर में दर्द है क्या?"

"....."

"तुम्हें मेरी सौगन्ध पारो, बताओ न! क्या बात है? छोटेलाल से कोई दवा मँगवाऊँ क्या तुम्हारे लिए?"

"तुम्हें क्या मतलब ! तुम अपना काम करो। मुझे चैन से रहने दो।" बड़ी रुखाई से पारो ने जवाब दिया।

सोमा समोसे बनवाती हुई बीच में उठी थी और गुसलखाने की ओर जा रही थी। पार्वती का उखड़ा-उखड़ा मूड, बिखरे बाल और सूजी हुई आँखें देखकर ही सोमा का मन कुछ चिन्तित-सा हो उठा था। पार्वती के प्रति छोटी बहिन की भाँति ममता भी सोमा के हृदय में थी। लेकिन इस समय के पार्वती के शब्दों ने उसे मानों आसमान से उठाकर धरती पर पटक दिया था।

क्या सचमुच सोमा पार्वती के चैन में बाधक बन रही है ? शायद इसीलिए पार्वती आजकल अपने कमरे से भी कम ही निकलती है···उसके सामने भी नहीं पड़ना चाहती।

छिः····छिः वह भी क्या सोचने लगी। पार्वती इतना नहीं बदल सकती। अभी दो महीने पहले की ही बात है। पार्वती के सिरे में बहुत तेज दर्द हो रहा था। सोमा घंटे भर तक उसके सिर में तेल की मालिश करती रही थी। कुछ आराम मिलते ही पार्वती न जाने कब सो गई। उसके सो जाने पर आश्वस्त होकर सोमा बुआ जी के पास लौट आई थी। दो घण्टे की नींद के बाद, पार्वती जब उठी तो सोमा ने गरम-गरम चाय उसके कमरे में पहुँचवा दी और स्वयं भी जाकर पूछने लगीं, "अब कैसी हो पारो ?"

"अच्छी तो हूँ।" कहकर पार्वती प्रसन्नतापूर्वक पलंग से नीचे उतरी और दोनों बाँहें सोमा के गले में डालकर बोली, "सच सोमा, कितनी अच्छी हो तुम ! कभी-कभी मुझे लगता है, पिछले जन्म की मेरी बड़ी बहिन हो, जो दूसरे घर में पैदा होकर भी मुझे मिल गई। इतना आराम तो मुझे माँ भी नहीं देती थीं। जब भी सिर में दर्द होता तो चमेली (नौकरानी) से कह देती थीं···अरे बाप रे, बड़े-बड़े हाथ हैं चमेली के···उसके हाथ सिर में लगें तो अच्छा भला सिर भी दुखने लगे।"

हठात् सोमा ने उसके मुख पर हाथ रख दिया और बोली, "अच्छा ! अच्छा ! चुप रहो, आराम करो ! अब ज्यादा मत बोलो, नहीं तो परेशानी होगी।"

"अरे सुमी, तुम्हारे रहते मुझे परेशानी·····राम का नाम लो।" चाय का प्याला पकड़ते हुए पार्वती खिलखिलाकर हँस दी।

"कभी-न-कभी तो मुझे जाना ही पड़ेगा, आज नहीं तो कल। अपना ख्याल तुम स्वयं ही रखा करो, जिससे यहाँ से जाते समय मुझे तुम्हारी चिन्ता न रहे।"

"ना बाबा, मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगी, चाहे सुशील भैया को जाना पड़ जाय।"

"कैसी पगली हो। अच्छा, अब बात बन्द! आराम करो, मैं चलती हूँ।"

सोमा का हाथ पकड़कर पार्वती ने रोक लिया—'बउआ जी कर तो रही हैं काम। छोटेलाल और महाराजिन भी साथ में हैं, फिर क्या चिन्ता है? आज जरा मेरे पास ही बैठ जाओ।"

और, सोमा अनुभव कर रही थी कि वह बेकार ही चिन्तित हो रही है। इतना स्नेह उसे कहाँ मिलेगा अकेली रहने में। थोड़ी देर वह पार्वती के साथ हँस-बोलकर बातें करती रही। लेकिन बउआ जी का ध्यान आते ही वह उठ खड़ी हुई और बोली, 'बउआ जी की उम्र देखो न! इस उम्र में भी बेचारी कितना काम करती हैं दिन भर। तुम्हारे पास अभी श्यामा आती ही होगी और मुस्कुराती हुई वह कमरे से बाहर आ गई थी।

आज सोमा के हाथ व्यस्त थे और मन में पिछली बातें कौंध रही थीं। अपनी पीड़ा को उसने एकान्त क्षणों में स्वयं ही पिया है। कितना बदल गई है पार्वती! पार्वती की उसने कभी उपेक्षा नहीं की। न ही कभी उपेक्षा का भाव उसके मन में आया। एक दिन तो बउआ जी ने कह भी दिया था, "बहू, इतनी चिन्ता न किया कर उसकी। वैसे ही कभी काम को हाथ नहीं लगाती। अपना घर तो सँभालना ही पड़ेगा। मैं भी कोई हमेशा थोड़े ही बैठी रहूँगी।"

"बउआ जी, आप बेकार चिन्ता करती हैं। ईश्वर की कृपा से नौकर-चाकर काफी हैं। ज्यादा काम की जरूरत ही क्या है?" हँसकर खुले मन से सोमा ने कहा।

"नौकरों के भरोसे कहीं घर चलता है ? अपना घर तो आप ही देखना पड़ता है। अभी तो कोई बात नहीं, खाने-खेलने के दिन हैं। मगर जब दो-चार हो जाएँगे तब ?"

"बउआ जी, समय पर सब हो जाएगा।"

पार्वती बड़े घर की बेटी है और सुन्दर भी, लेकिन बउआजी को उससे सन्तोष नहीं था। वह चाहती थीं कि उनकी बहू गृह-कार्य में भी सुदक्ष हो; सुघर गृहिणी हो और अपना घर सँभाल रखने की क्षमतावाली हो। उनके मन में बहू की कुछ ऐसी ही कल्पना थी और शायद यही गुण देखकर वह सोमा को बहुत चाहने लगी थीं। पार्वती के अल्हड़ स्वभाव का उन्हें ज्ञान हो गया था। अतः उसके सामने सोमा की प्रशंसा कभी नहीं करतीं। सोमा को भी प्रशंसा की भूख नहीं थी। अपितु अपनी प्रशंसा की प्रतिक्रिया से उत्पन्न स्थिति से बचने के लिए, वह स्वयं नहीं चाहती थी कि कोई उसकी प्रशंसा करे। और घर का काम-काज उसके लिए बोझ नहीं था वरन् उसका जीवन बन गया था।

आज पार्वती के झुँझलाहट में बोले गए शब्द बउजा जी के कानों में भी पड़ गए। फिर भी, वह चुप रहीं। सोमा के मन की पोड़ा उन्हें भी छू रही थी। सिर नीचे झुकाए हुई सोमा अपने को बाहर से सामान्य दिखाने का प्रयत्न करती रही, परन्तु भीतर से सामान्य नहीं हो पा रही थी। बउआ जी के सामने से उठकर चले जाना भी उसे अच्छा नहीं लगा। उसका मन उमड़-घुमड़ उठा। उसकी आँखों में आँसू छलक आए। आँसुओं को उसने पलकों में ही पी लिया। उसकी झुकी पलकों की नमी बउआ जी से छिपी न रही। वह कुछ कहना ही चाहती थीं कि बीच में ही श्यामा आगई और उमंग से बोली, "आहा, छोटी भाभी, आज तो गरम-गरम समोसे बना रही हो !"

सोमा ने यह सुनकर हँसना चाहा; परन्तु हँस न सकी। वैसी ही गम्भीर मुद्रा बनी रही। श्यामा उसके समीप आई। सोमा की ठोड़ी ऊपर उठाकर बोली, "अरे भई, हँसो न, आज चाँद पर बदली कैसे छाई है।" सोमा को

चुपचाप देखकर वह बउआ जी की ओर उन्मुख होकर बोली, "बड़ी अम्मा, माजरा क्या है···बड़ी भाभी तो कैकेयी बनी हैं···।"

वाक्य पूरा नहीं हुआ। उसने जीभ दाँतों तले दबाई, मानों कोई अभद्र बात कहते-कहते सँभल गई हो। उसने मुख पर हाथ रख लिया, कहीं पार्वती सुन न ले। पार्वती का स्वभाव शीघ्र ही रूठ जाने का है, इस कारण श्यामा पार्वती के प्रति किसी भी व्यंग्य और परिहास से बचती है। लेकिन, सोमा के व्यवहार में उसे वह सब मिला, जो वह स्नेही भाभी से पा सकती है।

श्यामा के कॉलेज में वसन्तोत्सव पर एक नाटक का मंचन किया गया। श्यामा जरी-पाड़ की एक-एक साड़ी पार्वती और सोमा दोनों से ले गई। साड़ी में पड़ गई सलवटें देखकर पार्वती के माथे में भी सलवटें पड़ गईं। अतः फेयर-वेल-पार्टी के अवसर पर फैंसी ड्रेस के लिए वह केवल सोमा से ही कपड़े ले गई। श्यामा को कहीं जाना होता, तो सोमा अपना बक्स उसके आगे खोलकर रख देती। श्यामा उसमें एक-एक साड़ी का बार्डर कंधे पर रखकर देखती। शीशे के सामने खड़ी होकर रंगों का मेल मिलाती और तब कहीं सज-सँवरकर तैयार होती।

ऐसे ही समय एक दिन पार्वती उधर आ गई। उसने सोमा से कहा, "सुमी, क्यों इसका दिमाग बिगाड़ रही हो?"

"कुछ नहीं पारो, चार दिन पीछे यह ससुराल चली जायगी तब मैं थोड़े ही साथ-साथ जाऊँगी।"

ससुराल का नाम सुनते ही—'छोटी भाभी, तुम बड़ी वो हो,' कहती हुई सबसे ऊपर रखी दो साड़ियाँ उठाकर श्यामा अपने कमरे में भाग गई। पार्वती के शब्द उसके कानों में चुभते रहे थे। बाद में वह बड़बड़ाई—'कौन कहता है बड़ी भाभी से कि अपनी साड़ियाँ दो। न तो कभी खुद देती हैं और छोटी भाभी को भी भड़काती रहती हैं···वो तो छोटी भाभी इतनी अच्छी हैं कि कुछ कहती ही नहीं···दिमाग तो बड़ी भाभी का खुद का खराब है। कौन कहे हरि भैया से। कहूँ तो वो भी मुझे ही डाँट देंगे···।'

और, उस दिन श्यामा बहुत प्रसन्न थी। उसने अपने कानों से सुना, पार्वती भाभी को हरि भैया डाँट रहे थे और कह रहे थे—"सुशील मेरे लिए राम से भी ज्यादा है। उसे यहाँ से निकालने की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता। एक-दो महीने में कहीं नौकरी लग जाएगी, वह खुद ही चला जाएगा···तब बजाना चैन की वंशी।" गुस्से में पैर पटकते हुए हरि के बाहर आने की ध्वनि सुनी, तो श्यामा चुपचाप सीढ़ियाँ उतर गई।

वह भली-भाँति समझ गई कि पार्वती क्या चाहती है, परन्तु सोमा का तनिक भी उदास मुख उससे नहीं देखा जाता। अतः उसने सब सुनकर बात टाल दी। हाँ, एकान्त में बड़ी अम्मा के कानों में उसने सब कुछ उड़ेल दिया। वह जानती थी कि बड़ी अम्मा बात को पी जाएँगी और कह देने से उसकी अपनी उत्कंठा का शमन भी हो गया।

बउआ जी ने अवसर देखकर कृष्णा जी को वस्तुस्थिति से अवगत करा दिया। सोमा साहू साहब की सुख-सुविधा का यथासाध्य ध्यान रखती थी। नियत समय पर नहाने का पानी रखवाना, कपड़े रखवा देना, हुक्का तैयार करवा देना, पान लगाकर पानों की डिबिया सजा देना और खाना खाने के बाद हाथ धुलवाने जैसे छोटे-मोटे काम करने का सोमा को सदैव ध्यान रहता था। उसकी सेवा-शुश्रूषा से वह गद्गद हो जाते और धीरे-धीरे वह भी सोमा को पार्वती से अधिक चाहने लगे थे।

बउआ जी से पार्वती का मन्तव्य जानकर उन्हें दुःख हुआ, परन्तु वह आश्चर्यान्वित न थे। मानो पार्वती से उन्हें ऐसी ही आशा थी। वह यह भी जानते थे कि किसी-न-किसी दिन उन्हें सुशील को अलग घर में भेजना ही पड़ेगा। यही अच्छा था कि सुशील के अनुरूप ही शील-स्वभाववाली पत्नी उसे मिल गई है। दोनों जहाँ भी रहेंगे सुख-सन्तोष का अनुभव करेंगे। परिश्रमी जीव हैं, उन्हें विशेष कष्ट न होगा। दुख उन्हें इसी बात का था कि सुशील को नौकरी मिल जाती तो अलग रहने की अनुमति सहर्ष दे देते। वैसे जितनी जल्दी सुशील अपने पैरों पर खड़ा हो जाय, उतना ही अच्छा है। अलग होने तक मन में गाँठ न पड़नी चाहिए।

बउआ जी की बात सुनकर वह मौन रहे, परन्तु मन में उद्वेलन अनुभव कर रहे थे। मन से वह यही चाहते थे कि सुशील की नौकरी कहीं लग जाय तो अच्छा हो। भले ही अलग रहेगा, पास तो रह सकेगा।

● ● ●

: ४ :

स्थानीय क्षेत्रों में छोटे-छोटे जमींदारों, नवाबों और रईसों का व्यापक प्रभाव होता है। साहू साहब कृष्णा जी का भी मुरादाबाद और पास-पड़ोस के क्षेत्रों में काफी प्रभाव था। प्रभाव के साथ सुशील की योग्यता ने सोने में सुगन्ध का काम कर दिया। सुशील स्थानीय डिग्री कॉलेज में ही अर्थशास्त्र का प्राध्यापक हो गया। अवसर देखकर साहू साहब ने सुशील से चर्चा की, "बेटा, नीमवाला मकान किराएदार ने खाली कर दिया है। उसे अपने कब्जे में लेना है। मैंने मजदूरों से बात कर ली है। दीपावली से पहले ही मकान की पुताई और मरम्मत कराके सब व्यवस्थित हो जाएगा। अतः दीपावली पर वहाँ भी पूजन हो जाए तो अच्छा रहेगा।"

उनके मुख से अकस्मात् नीमवाले मकान और उसकी व्यवस्था की बात सुनकर सुशील आश्चर्य में पड़ गया। उनकी किञ्चित् गम्भीर मुख-मुद्रा से उसे अनुमान हो गया कि यह उसके स्वतंत्र जीवन का आरम्भ है। उनके द्वारा लिए गए किसी पूर्व निर्णय का यह अप्रत्यक्ष संकेत था। इसमें उसके लिए कुछ कहने या जिज्ञासा करने की गुंजाइश ही न थी। उसके कानों में

घर की कोई भी कटु या मनमुटाववाली बात नहीं पड़ पाती थी। हाँ, जब कृष्णा जी से किसी बात का संकेत या आदेश मिलता, तभी उसे पीछे हो रही घटनाओं की प्रतिक्रिया का आभास होता था। सोमा के मुख से उसने कोई घरेलू चर्चा या शिकायत न सुनी थी। परन्तु इस समय कृष्णा जी की गम्भीर और दुख भरी मनःस्थिति ने उसे कुछ समझ जाने के लिए बाध्य किया और उसने तुरन्त ही अधूरी बात पूरी न कर पाने की दुविधा से उन्हें उबार लिया।

"काका जी, मैं सब देख लूँगा, आप चिन्ता न करें। दीपावली के पूजन का विचार अच्छा है। मेरे दोस्त भी मेरी नौकरी की मिठाई माँग रहे हैं। अच्छा है, एक पन्थ दो काज हो जाएँगे।"

"बेटा, पूजन अवश्य ही वहाँ होना है, परन्तु मित्रों की पार्टी का प्रबन्ध इधर ही करना···जब तक मैं जिन्दा हूँ, इन छोटी-मोटी बातों की चिन्ता तुम्हें नहीं करनी है। आराम से रहो, जहाँ भी रहो; भगवान् तुम्हारी मेहनत का फल देंगे।"

नीमवाले मकान की छोटी-मोटी मरम्मत और पुताई हो गई। दरवाजे खिड़की के कपाटों पर वार्निश भी हो गई। धुल-पुँछकर फर्श भी चमकने लगी। कृष्णा जी स्वयं जाकर देख आए कि वहाँ रहने में कोई परेशानी न हो। उनकी बड़ी हवेली के सामने तो वह मकान छोटा ही लगता था। फिर भी, उसमें तीन कमरे, बरामदा और रसोई-घर नीचे के हिस्से में बने थे। सड़क के किनारेवाले कमरे और बरामदे के ऊपर एक बड़ा कमरा ऊपर की मञ्जिल पर था और उसके सामने की खुली छत पर धूप इत्यादि का आराम था।

सड़क के किनारेवाले नीचे के कमरे को सुशील ने अपनी बैठक का कमरा बना लिया था, ताकि इसी कमरे में उसके छात्र और मित्र आ जा सकें। तिमंजिले पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ बनी थीं। उस पर चढ़कर पास-पड़ोस के मकानों की छतें स्पष्ट दीखती थीं। गली के बाहर खुली चौड़ी सड़क स्टेशन की ओर चली गई थी। इसी सड़क पर कुछ दूरी पर कृष्णा जी की कोठी दिखलाई देती थी। कोठी का एक कोना तो छत से भी दिखलाई पड़ता था।

मकान से सटा हुआ नीम का पेड़ न होता, तो सम्भवतः पूरी कोठी दिखलाई पड़ती।

पार्वती को विश्वास न था कि यह सब कुछ इतनी शीघ्रता से घटित होगा। सुशील और सोमा के अलग मकान में जाने की बात सुनकर वह अपने को कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं पा रही थी। प्रसन्नता प्रकट करना शोभनीय नहीं था और मन में उसे दुःख भी नहीं था। इन दिनों तो सोमा से खिंची-खिंची सी रहकर वह प्रायः अपने कमरे में ही पड़ी रहने लगी थी। अब उसने बाहर निकलना आरम्भ कर दिया और सोमा तथा श्यामा के साथ पहले की तरह ही सामान्य ढंग से रहने का प्रयत्न करने लगी।

सोमा के चले जाने के विचार से श्यामा बहुत दुखी थी। उसकी डबडबाई आँखें और बुझा-बुझा सा मन देखकर सोमा का दिल भी भर आता था। सोमा को बउआ जी का भी बहुत मोह था। उनकी छत्रच्छाया में उसे माँ की ममता और संरक्षण मिला। अब अलग रहकर तो उसके कन्धों पर गृहस्थी का पूरा दायित्व होगा। उसका दिल भर-भर आता था। सुशील के कालेज चले जाने पर दिन भर अकेली रहकर उसे समय काटना होगा···दो प्राणियों का काम ही कितना होता है। लेकिन स्वामित्व की भावना बहुत से अभावों को पूरा कर देती है। अपने घर की वह स्वामिनी होगी···उसके सन्तोष के लिए यही बहुत था।

× × ×

दीपावली का पूजन धूमधाम से सम्पन्न हो गया। सुशील और सोमा दोनों ही नए घर में आकर नई दिनचर्या के अभ्यस्त होने लगे।

कृष्णा जी की कोठी में सोमा का कमरा भी आधुनिक साज-सज्जा से परिपूर्ण था। ऊँचे दरवाजों में लहराते रंग-बिरंगे पर्दे····शीशम की लकड़ी का नक्काशीदार बड़ा सा पलंग, दीवारों पर लगी हुई आबनूस की बनी काले पालिश की कोनिशें···। उन बेलबूटेवाली कोनिशों पर मुरादाबादी काम के पीतल के कुछ पात्र सजे रहते थे। कोने में बनी एक गोल रेक पर एलार्म घड़ी के पास चाँदी की सुन्दर-सी नक्काशीदार तश्तरी रखी रहती थी। फर्श पर रंग-बिरंगे फूलोंवाला गलीचा बिछा रहता था। एक ओर रखी लंबे हत्थोंवाली आराम-

कुर्सी सोमा को विशेष प्रिय थी। उसी कुर्सी पर अधलेटी होकर, अवकाश के क्षणों में वह आराम कर लेती थी और श्यामा पास आकर उसके हत्थे पर बैठकर उससे बातचीत करती, तो उसको बहुत भला लगता था।

सुशील की अध्ययनशील प्रवृत्ति से प्रभावित होकर कृष्णा जी ने शीशे लगी हुई दो आलमारियाँ बनवाकर उसकी पुस्तकों के लिए रखवा दी थीं और दूसरे मकान में जाते समय उन्होंने उन आलमारियों को भी साथ ले जाने का सुशील से अनुरोध किया। सुशील ने अपने अध्ययन कक्ष में वे आलमारियाँ रखवा लीं।

कोठी के उस विशाल कक्ष में रहने की अभ्यस्त सोमा को, इस पुराने ढंग के बने मकान में आकर लगा कि उसके कमरों की नीची छतों के नीचे जैसे उसका मन भी दबा जा रहा है। लेकिन फिर धीरे-धीरे उन्हीं दीवारों और छतों के नीचे रहकर जब कुछ समय तेजी से निकल गया, तो वही मकान उसका अपना हो गया और उसे वहाँ ऐसा अपनापन लगने लगा कि कहीं भी जाकर अधिक समय घर से बाहर रहना उसे अच्छा नहीं लगता। हाँ, अकेले रहते हुए पुस्तकें पढ़ने की रुचि उसमें जाग्रत हो गई।

× × ×

सुशील स्वभाव से इतना सरल था कि सोमा द्वारा न कही जानेवाली आवश्यकता पर उसका ध्यान ही न जाता था। वह अध्यवसायी था और आमदनी भी बँधी हुई सीमाओं में थी। अतः सोमा भी कभी अतिरिक्त व्यय के लिए न कहती थी। सोमा को कई बार सिर में पीड़ा और देह-दौर्बल्य का आभास हुआ। समय से सब ठीक हो जाएगा, यही सोचकर उसने अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा की थी। उसकी यह दुर्बलता ही इस समय प्राणघातक हो रही थी। उसे प्रसव-पीड़ा हुई···उसकी दशा बिगड़ती जा रही थी।

सुशील ने काका जी को सूचित किया और सोमा को अस्पताल पहुँचाया गया। अस्पताल में लेडी-डाक्टर ने उसकी दशा गम्भीर बतलाई और यथासाध्य उपचार का आश्वासन देकर वह उसे ऑपरेशन थियेटर में ले गई।

सुशील मानो सोते से जाग पड़ा हो। अब तक वह पूर्णतः निश्चिन्त-सा था। अकस्मात् पत्नी की यह दारुण दशा देखकर वह घबरा गया। कृष्णा जी

स्वयं भी बहुत दुखी और चिन्तित थे। सुशील के कन्धे पर हाथ रखकर सान्त्वना देते हुए वह बोले, "बेटे, रुपये-पैसे की चिन्ता न करना। बहू की जान बच जाए, बस यही ईश्वर से प्रार्थना है।"

पल भर के लिए सुशील का मन हुआ कि वह चीखकर रो पड़े। फिर भी, अपने को सँभालते हुए वह बोला, 'काकाजी, आप घर जाइए, हम और हरि तो यहाँ हैं ही।"

सुशील के बार-बार अनुरोध करने पर कृष्णा जी भारी मन से घर चले गए।

आपरेशन थियेटर से जैसे ही कोई नर्स बाहर आती, सुशील व्यग्रता से उसकी ओर देखता। हरि भी उत्सुक होकर आगे बढ़ आता, परन्तु दूसरों के व्यक्तिगत सुख-दुःख और भावनाओं से उदासीन निर्लिप्त-सी नर्सें व्यस्तता में ही शीघ्रता से इधर से उधर आती-जाती दिखतीं।

दुःख के आवेग से बोझिल होकर सुशील सिर झुकाए एक बेंच पर बैठा था। काका जी के दुखी मन का भी उसे ध्यान आ रहा था। उनके वात्सल्य-भरे शब्द उसके मन को जैसे थपथपा रहे थे। तभी एक नर्स ने आकर पूछा "सोमा देवी के साथ कौन है?"

सुशील बेंच से उठकर आगे बढ़ा। आशंकित मन से ही उसने पूछा, "कहिए, सोमा ठीक तो है?"

"कंडीशन सीरियस है। आपरेशन करना ही पड़ेगा। इस फार्म पर साइन कर दो।" नर्स ने रुखाई से कहा।

सुशील ने काँपते हाथों से हस्ताक्षर कर दिए और तुरन्त आपरेशन होने की सूचना देने के लिए हरि को घर भेजा। हरि के वापस लौटने तक सोमा के पिता और माँ भी वहाँ पहुँच गई। माँ के आँसू नहीं रुक रहे थे। बार-बार ईश्वर से प्रार्थना करतीं—'भगवान् मेरी सोमा को बचा लो···' और आपरेशन थियेटर से आती-जाती प्रत्येक परिचारिका या नर्स से पूछतीं—"सोमा कैसी है?····मेरी बेटी कैसी है····?" एक नर्स ने तनिक सहानुभूति से उत्तर दिया, "माँ जी, जरा धीरज रखिए। अभी तो आपरेशन में एक घंटा और लगेगा।"

चितातुर सुशील कठिनाई से मन को संयत कर पा रहा था। अतीत की यादें सुशील के मन से टकरा रही थीं—जीवन भी क्या है····पिता की मृत्यु हुई, तब मैं कैसा असहाय हो गया था····सारा गाँव आकर घर के चारों ओर जुड़ गया था···बाहर, भीतर, सब ओर भीड़ लगी थी···मैं पिता की मृतदेह से लिपटा जा रहा था····वहाँ वैद्यराज ही ज्यादा अपने से थे, जो मुझे ढाढ़स बँधा रहे थे। तभी किशन काका (कृष्णा जी) पहुँचे और सिसकियाँ भरकर रोते हुए उन्होंने मुझे कलेजे से लगा लिया था—और मुझसे भी ऊँचे स्वर में वह रो पड़े थे····'रो मत बेटा···रो मत···मैं तो हूँ बेटा, मुझे ही गिरधर समझना···' और फिर तो चौधरी गिरधर सिंह के स्थान पर, मेरे पिता के स्थान पर काका जी ने सदैव ही मुझ पर छाया की। कभी पिता का अभाव अनुभव न होने दिया। आज फिर, जब किसी स्वजन का दुःख मुझे हिला गया, काका जी मेरे कन्धे थपथपा गए···। क्या सोमा मुझे छोड़ जाएगी ?"

सोचते-सोचते एक बार तो सुशील काँप गया—'नहीं···नहीं···ऐसा नहीं होगा···' मन को दिलासा देते हुए सुशील ने सिर को झटक दिया। मानो उसके नकारने से विपत्ति का बादल स्वयं छँट जाएगा।

हरि अनुभव कर रहा था कि सुशील बहुत परेशान है। उसने अपने मन का आवेग दबाते हुए बड़े धैर्य, दृढ़ता और प्रेम से सुशील के कन्धे पर हाथ रखा। हठात् सुशील चौंक पड़ा। हरि की आँखों में भी विषाद-सा छाया था। दुःख और भय से उसका चेहरा सफेद लग रहा था। सोमा की माँ लगातार रो रही थी। उसके पिता अनमने से खड़े थे; तभी नर्स ने आकर कहा, "मरीज को बचा लिया है, बच्चा नहीं बचा। आप लोग आधे घंटे में बच्चे की लाश ले जायें।" और वह वापस चली गई।

सभी की आँखें दुःख से गीली हो आईं। सोमा के पिता ने सुशील को धैर्य दिलाते हुए कहा, "बेटा, धीरज रखो। जो ऊपरवाले को मंजूर है, वही होता है। अब हमें आगे की सोचनी है, और वह हरिमोहन को साथ लेकर बच्चे की अन्तिम क्रिया का प्रबन्ध करने के लिए अस्पताल से बाहर चले गए।

लगभग आधे घंटे बाद सोमा के पिता के साथ, सोमा के दोनों भाई तथा हरि और राम भी आ गए। बच्चे की मृत्यु का दुखद समाचार सुनकर सुशील के साथी प्राध्यापक भी आ गए। बच्चे की मृत देह लेकर, सुशील के साथी, सोमा के भाई सुरेश और टीपू, राम, हरि भी नौकर छोटेलाल को लेकर राम-गंगा की ओर चले गए। सोमा के माता-पिता सुशील के पास ही रह गए।

आपरेशन हो जाने के लगभग दो घंटे बाद सोमा को कमरे में लाया गया। वह बेहोश थी। उसकी दुःखविह्वल माँ को बेटी का जीवन बच जाने की आशा ने कुछ आश्वस्त तो अवश्य कर दिया था, फिर भी उनके मुख से शब्द नहीं निकल पा रहे थे और आँखों से आँसू लगातार बह रहे थे।

संध्या हो चुकी थी। सोमा की बेहोशी टूटी। आपरेशन के कारण वह और भी दुर्बल दिखाई दे रही थी। उसकी आँखों में उदासीनता भरी थी। उसके पिता ने इशारे से माँ को समझा दिया था कि यदि वह न पूछे तो तुम बच्चे के मरने की चर्चा करके और रोना मत। सोमा ने कुछ भी न पूछा। हाँ, सबकी तरह आँखें देखकर ही शायद वह कुछ समझ रही थी।

उसकी अवस्था तनिक अच्छी देखकर सब लोग कुछ समय के लिए घर चले गए। केवल सुशील ही अस्पताल में उसके पास रह गया। वह दवा की शीशी उठाने को मुड़ा, तो सोमा दीवार की ओर देख रही थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। यह देख सुशील का भी दिल भर आया। लेकिन, सुशील की डबडबाई आँखें देखकर वह चौंक पड़ी, क्योंकि यह पहला ही अवसर था, जब उसने अपने लिए सुशील को इतना द्रवित और चिन्तित देखा था। अपने हाथ से सोमा का सिर सहलाते हुए सुशील ने कहा, "सोमा, मन दुखी मत करो। वह हमारे भाग्य में नहीं था।"

सुशील के इन शब्दों ने सोमा को स्पष्ट आभास करा दिया कि उसकी शंका सत्य है। उसकी रुलाई फूट पड़ी। परन्तु सुशील को भी रोता देखकर उसने मन कड़ा किया, अपने आँसू पोंछ लिये और कहा, "जिसे जाना हो उसे रोक ही कौन सकता है?"

समय देखकर सुशील ने सोमा को दवा खिला दी और काफी देर तक दोनों मौन रहे। सोमा ने अस्पताल में अपने पास अपनी माँ और पति को सदैव प्रस्तुत पाया। कभी छुट्टी न लेनेवाले सुशील ने रुग्णावस्था में उसे पलभर के लिए भी अकेला न रहने दिया।

दस दिन बाद वह अस्पताल से घर आ गई। उसकी माँ एक माह तक उसके पास रहीं। यों तो बउआ जी भी सब सँभाल लेतीं, परन्तु पार्वती का बेटा दिनेश, जो एक वर्ष का था, बहुत ही नटखट और चचंल था। अतः बउआ जी इतने दिन घर को कैसे छोड़तीं। वह प्रायः आकर सोमा को देख जाती थीं। श्यामा भी अक्सर सोमा के पास रह जाती थी। औपचारिकता पार्वती ने भी निभाई, परन्तु उसका उपस्थिति-स्पर्श आत्मीयता से सर्वथा परे था।

पार्वती के बेटे दिनेश को सोमा बहुत प्यार करती थी। उसके जन्मदिन पर उसने अनेक रंगों और डिजाइनों के कपड़े बनाए थे। बड़ी उमंग से गुलाबी रंग का ऊनी सूट भी बुना था। उसके भोले प्यारे से मुखड़े को देखकर वह निहाल हो जाती थी और बार-बार उसका मुख चूम लेती थी। परन्तु पुत्रवती हो जाने के बाद पार्वती को अपने भाग्य पर कुछ अभिमान-सा होने लगा था। यह बात सोमा जानती थी, अनुभव करती थी और दिनेश के प्रति अपने मोह के कारण उसने पार्वती के उपेक्षा भाव को अनदेखा-सा कर दिया था, वह दिनेश को देखने के लिए सदा लालायित रहती थी।

● ● ●

: ५ :

सोमा अपनी नन्ही-सी गुड़िया को आँगन में लिए बैठी थी। और धूप सेंक रही थी। वह सोच रही थी···पिता जी कहा करते थे, "बेटी, दुख का वक्त हजार गुना होकर आता है और सुख का वक्त पंख लगाकर उड़ जाता है।"

सचमुच ही विगत दस वर्षों का समय यों ही व्यतीत हो गया। मानो पंख लगाकर ही आया हो। न जाने क्यों बार-बार वह निर्मोही याद आ जाता है, मैंने तो उसे देखा तक न था। यदि एक बार देख पाती तो शायद पागल ही हो जाती। और····अब विगत को क्या कुरेदूँ। ईश्वर मुझे शक्ति दे! इस नन्हीं सी गुड़िया को फूलों की तरह पालूँ और उस चले गए का मोह मुझे न झकझोरे। बउआ जी ने भी उसका कितना गम माना। बूढ़े हाड़ ज्यादा सदमा न सह सके। तभी से उन्हें ज्वर हो गया था। डेढ़ महीने बिस्तर पर पड़े रहकर वह भगवान् को प्यारी हो गईं।

बउआ जी के दिवंगत हो जाने पर पार्वती मुझसे लिपट कर कितना रोई थी। शारीरिक कष्ट झेलकर दुर्बल हो गया तन और दो प्रियजनों के बिछोह के दुःख से दबा मन····फिर भी मुझे लगा था, मेरी बचपन की सहेली पारो मुझे फिर मिल गई है।

पार्वती का बड़ा बेटा दिनेश ग्यारह वर्ष का हो गया है। मँझला बेटा मनीष छह वर्ष का और छोटा गोपाल तो गुड़िया के साथ का ही है। गुड़िया से दो महीने छोटा है। गुड़िया और गोपाल साथ-साथ खेलते हुए खिलौनों के लिए दौड़ते तो पार्वती भी खिलखिलाकर हँस देती और कहती, "लड़के तो निगोड़े जन्म से ही शैतान होते हैं।" फिर आदेशात्मक स्वर में झिड़कती है, "गोपाल, दे गुड़िया को खिलौना" और गुड़िया····गोपाल के हाथ में खिलौना देखकर कभी छीनने की कोशिश नहीं करती। हाथ-पैर पटक-पटककर रोती है; आँखें मलने लगती है; चीखने-चिल्लाने लगती है ·····। सोमा को गुड़िया में

अपना ही रूप दिखलाई पड़ता है। जब भी पारो और सोमा के सम्मुख कोई वस्तु लेने का झगड़ा उठता था, सोमा ही गम खाती थी। अब यह नन्हीं-सी गुड़िया भी गोपाल को चपत लगाकर छीन लेने का यत्न नहीं करती···आँखें मलकर रो देती है। जैसे वह जानती हो कि गोपाल से वह जीत न सकेगी।

कितना विचित्र होता है मानव का मन भी। बउआ जी के दिवंगत हो जाने के बाद सोमा सदैव ही पार्वती को सहयोग देती रहती है···और सहयोग पाना मानो पार्वती का अधिकार है। परन्तु पार्वती से जिस व्यवहार की वह आकांक्षा रखती है, वह उसे नहीं मिलता। सोमा का विवाह कराकर पार्वती ने उस पर एक एहसान किया है। लगता है, जिन्दगी भर सोमा को वह ऋण चुकाना पड़ेगा।

गुड़िया के जन्म के पूर्व, दिनेश और गोपाल स्नेह से मौसी-मौसी कहते हुए सोमा से लिपट जाते थे और पार्वती डाँटकर उन्हें दूर हटा देती। मानो उसकी छाया भी बच्चों के लिए अमंगलकारी हो जाएगी। यह देख उसका मन रो उठता और बच्चे बेचारे दूर हटकर सहमी-सहमी दृष्टि से माँ की ओर देखते हुए वहाँ से खिसक जाते। कई बार तो जब भी सोमा कोठी से लौटती, उसका मन होता कि अपने दुर्भाग्य पर जी भरकर रोए, चीख-चीखकर रोए। पर, घर आते ही सुशील की स्नेहमयी दृष्टि उसे सान्त्वना देती, संतोष प्रदान करती। उसे महसूस होने लगता कि वह व्यर्थ ही मन को रोगी बनाए हुए है। उसे जो नया जीवन मिला है, वह प्रेम का वरदान है उसे भोगे और सुख से जिए।

सामाजिक क्रिया-कलाप और नौकरी के साथ ही अध्ययन में व्यस्त सुशील अब डाक्टर सुशीलचन्द्र हो गए। कालेज से घर और घर से कालेज तक ही उनकी दिनचर्चा सीमित हो गई। विद्यार्थी, साथी, सहयोगी जो भी किसी प्रकार की सहायता चाहते, घर पर ही आ जाते। कभी-कभी सोमा का सारा दिन बार-बार चाय बनाने और भोजन की व्यवस्था में ही लग जाता, फिर भी वह स्वयं को थका हुआ अनुभव न करती। रुपया-पैसा ही तो सबसे बड़ी वस्तु नहीं है। सम्मान का भी अपना स्थान है। सुशीलचन्द्र यदि ट्यूशन करते तो अन्य अध्यापकों की तरह हजारों रुपए अतिरिक्त कमा लेते, परन्तु

मुक्त हस्त से विद्यादान करना उनका स्वभाव बन गया है। और इस प्रकार आमदनी से ज्यादा खर्चा उन्होंने बाँध लिया है। कोई भी निर्धन छात्र आकर याचना करता और वह दस-पाँच रुपए प्रतिमाह उसको देना आरम्भ कर देते। इस अतिरिक्त व्यय-भार को वह अपनी प्रकाशित पुस्तकों की रायल्टी से पूरा कर लेते थे।

काका जी सुशील की इस दया-भावना को देखते और आकांक्षियों की सहायता करते उसे देखते, तो स्वयं द्रवित होकर अचकन की बाँह की कोर से अपने आँसू पोंछते और सोमा से कहते, "बेटी, कोई देवता जन्म लेकर इस घर में आया है। उसके सदाव्रत में त्याग तो तुम्हें भी करना पड़ेगा, परन्तु मुझसे कभी संकोच मत करना। किसी चीज की जरूरत हो तो कहला देना, परेशानी मत उठाना।"

और तब सोमा को अनुभव होता कि पार्वती का कितना बड़ा ऋण उस पर है। वह उसके उमड़े हुए समस्त क्रोध को भूल जाती और उसके बच्चों के लिए शुभकामनाएँ करने लगती। उसे लगता, वस्तुतः पार्वती के मन में कलुष नहीं है; परन्तु जो उसे असह्य प्रतीत हो, उसे सह जाने की आदत उसकी कभी नहीं रही। यहाँ तक कि काका जी के सामने भी वह अपने क्रोध पर नियन्त्रण नहीं कर पाती।

× × ×

गोपाल तब एक वर्ष का ही था, जब राममोहन का विवाह हुआ। दिल्ली की किसी अंग्रेजी फर्म के मैनेजर की लड़की है—राममोहन की पत्नी शांति। दहेज भी खूब मिला और ससुर की कृपा से राममोहन आगरा की एक प्राइवेट कम्पनी में पाँच सौ रुपए प्रतिमाह पर नौकर हो गया। साहब बनकर ठाट से रहता है। घर कम ही आता है। दो-चार दिन को आता भी है, तो अपने कमरे में ही आराम से पड़े रहना उसे अच्छा लगता है।

सोमा ने पार्वती को बार-बार समझाया कि वह राम और उसकी पत्नी के आचरण पर टीका-टिप्पणी न किया करे। ये उनके खाने और मौज उड़ाने के

दिन हैं। राम उनका अकेला देवर है। शांति के लिए तो सास, माँ, जेठानी सभी वही है। श्यामा अपने घर की हो गई। दो-चार दिन को श्यामा घर आती भी है, तो कभी शांति घर में होती है, कभी नहीं भी होती। जाने क्यों तीन बेटों की माँ होने पर भी पार्वती को कोई समझ नहीं आती। बहू बेटी को लाड़-प्यार से रखेगी, तभी तो वे आदर करेंगी।

हाँ, इतना अवश्य है, जब से शांति आई है, पार्वती का सोमा के यहाँ आना-जाना बढ़ गया है। सोमा के प्रति उसका सहज स्नेह उमड़ने लगा है। मानो मन का द्वेष दूसरी ओर बह चला हो···। इधर एक वर्ष से राम और शांति घर नहीं आ पाए हैं। तब भी, न जाने क्यों पार्वती का मन उनकी ओर से साफ नहीं होता। वह किसी-न-किसी बात का दर्द, उन लोगों की कोई-न-कोई शिकायत मन में लिए ही रहती है।

× × ×

सुशीलचन्द्र ने बड़े प्यार से गुड़िया का नाम मधुरिमा रखा है। कालेज से लौटते ही वह 'बेटी मधु, मधूलिका, मधुरिमा, माधुरी' आदि अनेक नामों से उसे पुकारते हैं। घर में आते ही पहले गुड़िया से हँस-बोल लेते हैं, तब जाकर कपड़े वगैरह बदलते हैं। मधु के तनिक भी मचलने पर उनका माथा ठनकने लगता है। जरा भी देह गर्म होगी, तो तुरन्त डाक्टर ले आते हैं। बुखार हो जाने पर रात-रात भर गोद में लिए खड़े झुलाते रहते हैं।

गुड़िया को देखकर तो पार्वती के स्नेह का बहुत दिनों से सूख चुका सोता जैसे अचानक फूट पड़ा हो। अपने घर जरा-जरा से काम के लिए वह नौकरों की राह देखती, मगर यहाँ गुड़िया के गन्दे कपड़े बदलने तक में नहीं हिचकती। गुड़िया की बीमारी की सूचना मिलते ही दौड़ी चली आती है।

कैसी अनेक विचित्र दोहरी परिस्थितियाँ और मनःस्थितियाँ मानवजीवन में आती रहती हैं।

सुशीलचन्द्र को पी० एच० डी० की डिग्री मिलने पर काका जी ने सभी इष्टमित्रों को अल्पाहार के लिए निमन्त्रित किया था। तब, दबी जबान से पार्वती बड़बड़ाई थी, "इस घर का धन तो खैरात में ही बँटता रहेगा।"

और मुस्कुराते हुए सुशीलचन्द्र बोले, "भाभी जान, दावत तो काका जी ने कर दी, परन्तु आपकी साड़ी का ऋण मुझपर है।"

"सच कह रहे हो, सुशील भैया।" उमंग से खिलकर पार्वती बोली।

"हाँ भाभी, सच ! आज ही चलो।" सुशीलचन्द्र ने आग्रह किया।

डेढ़ सौ रुपये की जरी के काम की बनारसी साड़ी ने पार्वती का क्रोध और द्वेष सब भुला दिया था। श्यामा तब यहीं थी। उसने कहा, "बड़ी भाभी, तुम तो टीन के बर्तन की तरह जल्दी ही ठंडी-गरम हो जाती हो। दिनेश रूठ जाय तो मनाना कठिन है, पर बड़ी भाभी रूठें, तो पल भर में मान भी जाएँगी।"

नई साड़ी का उल्लास पार्वती पर व्याप्त था। हँसकर बोली, "श्यामा, अपनों से रूठा ही कहाँ जाता है। यह तो लेने-देने के बहाने हैं।" और उस समय सोमा को फिर अनुभव हुआ था कि पार्वती का सा भोला हृदय भी मिलना कठिन है।

एक दिन श्यामा कह रही थी, "छोटी भाभी, एक बात है। बड़ी भाभी करेंगी तो जी-जान से और लड़ने को ठानेंगी तो भी जी-जान से। मैं सोच रही थी कि मेरे जाने के बाद इन आठ वर्षों में बड़ी भाभी बहुत बदल गई होंगी, परन्तु उनका स्वभाव तनिक भी नहीं बदला है। हाँ, अब एक नया प्रतिद्वन्द्वी मिल गया है—शांति भाभी। वह यहाँ हों या न हों, मगर ये उन्हीं के पीछे पड़ी रहती हैं।"

"श्यामा, इस बात को जाने भी दो। स्वभाव जरा मुश्किल से ही बदलता है। मुझे ही देखो न ! तुम्हारे भैया कितना कहते रहे पढ़-लिख लो; परीक्षा दे डालो''''पर परीक्षा के नाम पर मुझे बुखार चढ़ जाता है। हाँ, कहानी की किताबें मुझे चाहे दिनभर पढ़ा लो।"

"छोटी भाभी, मैं बी. ए. तक पढ़ी भी, मगर बेकार हूँ। अखबार तक देखने का समय नहीं मिलता।"

श्यामा दो बच्चों की माँ बन गई थी। बनारस में साड़ियों के बहुत बड़े व्यापारी हैं, जिनके यहाँ उसका विवाह हुआ है। पढ़ी-लिखी लड़की, व्यवसायी घर में पहुँचकर दिन भर घर-गृहस्थी के काम में ही लगी रहती है। उसके

श्वशुर को नौकरों के हाथ का खाना पसन्द नहीं आता। दूसरी बात यह है कि घर में दो-तीन तिजोरियाँ रखी रहती हैं। अतः वह घर में किसी पुरुष सेवक को नहीं रखना चाहते। केवल महरी बर्तन साफ करने आती है, और नाउन विशेष अवसरों के अतिरिक्त काम कर लेती है।

श्यामा सहित उस परिवार में पाँच बहुएँ हैं। सभी बहुएँ सास के साथ मिलकर घर का काम सँभाल लेती हैं। उस घर की यह परम्परा रही कि एक-एक वर्ष बाद बहुएँ एक या डेढ़ माह को अपने मैके जाती हैं। श्यामा भी प्रतिवर्ष बच्चों की छुट्टियाँ होने पर गर्मियों में यहाँ आकर स्वतन्त्रतापूर्वक कुछ दिन व्यतीत कर जाती है। उसका हँसमुख स्वभाव पहले जैसा ही बना है। हाँ, पहनावे से सेठानी लगने लगती है। करधनी में जड़ाऊ गुच्छा लटकाए घूमना उसे विशेष प्रिय है।

गुड़िया के जन्म का समाचार जब श्यामा को मिला, वह बहुत प्रसन्न हुई। उसी दिन बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में प्रसाद चढ़ाने गई थी।

● ● ●

: ६ :

वसन्त ऋतु की सुहानी संध्या थी। आकाश में कहीं-कहीं लाल-पीले बादलों के टुकड़े छिटके हुए बड़े भले लग रहे थे। ढलते दिन का हल्का सुनहरा रंग आकाश में छा गया था। दिन के उजाले से भी तेज ताम्रवर्णी प्रकाश चारों ओर व्याप्त हो रहा था। श्वेत वस्तुएँ और अधिक श्वेत लग रही थीं। कमरों

में जले हुए बिजली के बल्वों का विचित्र दूधिया प्रकाश चारों ओर फैल रहा था।

विवाह की धूमधाम थी। अतिथियों के बच्चे अपनी क्रीड़ाओं में प्रसन्नता से किलक रहे थे। विपुल कोलाहल से घर का कोना-कोना गूँज रहा था। कुतूहल में तालियाँ बजा-बजाकर नाचते-गाते बच्चों के स्वर फैल रहे थे··· 'वह देखो कमरे की बत्ती कितनी अच्छी लग रही है···अरे मेरे कपड़ों का रंग ही बदल गया····वह देखो, बादल का टुकड़ा कैसा लाल-लाल है···हाथी की पीठ पर भगवान् जी जा रहे हैं···अरे, बादलों में कैसा बड़ा सा पहाड़ है···' इत्यादि शब्दों में बच्चों की पुलक भी थी और जिज्ञासा भी।

तभी, 'बहू आ गई'····'बहू आ गई' का शोर होने लगा। स्त्री-समुदाय में कुछ हलचल-सी हुई। स्त्रियों और बच्चों की भीड़ दरवाजे की ओर दौड़ने लगी। बाहर सड़क पर बारात की मोटर रुकी। पूजन और स्वागत का सामान पहले से ही तैयार था। बहू के स्वागत के लिए कलशों में भरा जल इत्यादि लेकर स्त्रियाँ मोटर तक पहुँचीं।

दिनेश का विवाह हुआ था। उसकी बगल में चमकीले वस्त्रों में लिपटी वधू थोड़ा घूँघट निकाले गठरी बनी बैठी थी। पार्वती ने दोनों हाथों से सँभालते हुए बहू को नीचे उतारा। पायल के घुँघरुओं से साड़ी का किनारा बचाकर छम-झम करती हुई बहू नीचे उतरी। उसके सिर पर मुरादाबादी नक्काशी की कलई की गागर रखी गई। गागर के गोल मुँह से केले के पत्ते बाहर झाँक रहे थे।

समवेत स्वरों में मंगल-गान करती हुई और मन्द गति से आगे बढ़ती हुई स्त्रियाँ बहू को कोठी के मुख्य द्वार तक लाईं। कलात्मक ढंग से अलंकृत और ग्यारह दीपकों से प्रकाशित थाली से पार्वती ने बहू और बेटे की आरती उतारी। गृह में प्रवेश के उपरान्त बताशे और चावल की ढेरियों पर बहू का चरण-स्पर्श कराया गया। थापे के सामने बैठाकर कुलदेवी-देवता की पूजा की गई। पूजन-विधि सम्पन्न होने पर दूल्हा मर्दानी बैठक में चला गया। हाल कमरे में पीढ़े पर बैठाकर बहू की चूनर और सेला उतरवा दिया गया, जिससे उसने भी चैन

की साँस ली। घर की स्त्रियाँ बारात से लौटे व्यक्तियों के खान-पान की व्यवस्था मे व्यस्त हो गईं।

सोमा दिन भर पार्वती के साथ व्यस्त रही थी। अपनी बेटी मधु को संबोधित करती हुई वह बोली, "चलो मधु, अब देर हो रही है, घर चलें।"

मधुरिमा पर विवाह में एकत्र हमजोलियों का ऐसा सम्मोहन व्याप्त था कि वह अभी घर जाना नहीं चाह रही थी। बोली, "आज मैं यहीं मौसी के रह जाऊँ माँ ?"

नकारात्मक मुद्रा में सिर हिलाते हुए सोमा ने कहा, "नहीं बेटी, अब घर चलो। दो दिन के हारे-थके तुम्हारे पिताजी अब आए हैं, उनके कपड़े वगैरह ठीक करने हैं। चलो, फिर कल आ जाना।"

आज्ञाकारी बच्चे की भाँति माँ के साथ जाती हुई मधु पीछे मुड़कर ललचाए नेत्रों से अपनी उन सखियों को देखती जा रही थी, जिनसे इस विवाह में उसका नया-नया परिचय हुआ था और जिनके साथ बोलने तथा खेलने में भी उसने खूब आनन्द लिया था।

× × × ×

विवाह में आए मेहमान विदा हो गए। दिनेश की बहू, सरिता, के आ जाने से मधु को इस घर में बार-बार आने का आकर्षण हो गया। पार्वती के बेटों में गोपाल मधु के साथ का था; परन्तु मधु को उससे विशेष लगाव न था। हाँ, मँझला बेटा मनीष मधु से छह वर्ष बड़ा था। वह प्रायः मधु को चिढ़ाया करता था। उसकी दोनों चोटियाँ पकड़कर खींच देता था। उसके हास-परिहास का कभी मधु जवाब दे देती, कभी हँसकर टाल देती और कभी चिढ़कर रोने लगती। अब इस घर में सरिता की सखी और एकमात्र ननद मधु ही थी। स्नेही स्वभाववाली, सौम्यदर्शना सरिता से मधु की मैत्री बढ़ती गई।

चौदहवर्षीया मधु हाई स्कूल की परीक्षा दे रही थी। जब भी उसका मन उचटता वह सरिता के पास चली जाती।

हरिमोहन के मन में लड़की की बहुत चाह थी। सरिता के आ जाने पर इस अभाव की पूर्ति हो गई। बोर्ड की परीक्षा हो जाने के बाद मधु को भी

डा० डिल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी
पुस्तकालय
डा० डिल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी
पुस्तकालय
8236

पर्याप्त अवकाश था। उसका यह अवकाश सरिता के साथ आनन्दपूर्वक बीतने लगा।

सरिता को इस घर में आए अभी एक माह भी नहीं बीता था कि आगरा से अकस्मात् राममोहन का तार आया—'शांति की हालत खराब है, भाभी को भेजो।'

तार पाकर हरि हतप्रभ से रह गए। पार्वती भी सारा वैर-भाव भूलकर आकस्मिक विपत्ति की आशंका से काँप उठी। उसी रात वह दिनेश को साथ लेकर आगरा चली गई।

पार्वती ने एक-दो बार बृजघाट तक रेल-यात्रा की थी गंगा नहाने के लिए। उसमें भी कुछ घंटों या बहुत से बहुत एक या दो दिन का प्रवास रहा था। अतः यही पहली ऐसी यात्रा थी, जब पार्वती को लंबे समय के लिए घर छोड़ना पड़ रहा था। चलने-चलते वह नई बहू सरिता को सब बातें बार-बार समझा रही थी। अपनी अनुपस्थिति में मधु को सरिता के पास छोड़ने की बात वह सोमा से कह गई।

× × × ×

पार्वती को लगभग दो माह आगरा रहना पड़ा। अपेंडिसाइटिस के कारण उदर में पीड़ा होने पर शान्ति को अस्पताल पहुँचाना पड़ा था। उसका ऑपरेशन किया गया। सामान्यतः इस प्रकार के आपरेशन होने पर पन्द्रह-बीस दिन में रोगी ठीक होने लगता है। लेकिन शान्ति को ठीक होने में अधिक समय लग गया। ऑपरेशन के बाद बेहोशी टूटने पर वह बार-बार पानी माँगती थी। उस दशा में उल्टियाँ न होने लगें, इस डर से पानी नहीं दिया जाता। बर्फ की डली से होंठों को तर किया जाता रहा। दुर्बलता शीघ्र दूर हो जाए, इसके लिए दिन में तीन-चार गिलास सन्तरे का रस दिया जाता था।

गर्मी के दिन थे। कमरे में कूलर लगा दिया गया। शान्ति बर्फ में ठंडा किया गया फलों का रस ही पसन्द करती थी। लेकिन शरीर की दुर्बलता में बर्फ घातक हो गई। दो दिन बाद ही उसकी साँस उखड़ने लगी। उसे डबल

निमोनिया हो गया। चार-पाँच दिन की विकट-यन्त्रणा सहने के बाद ही वह निमोनिया की पीड़ा से छुटकारा पा सकी थी। थोड़ी-थोड़ी देर बाद उसे खाँसी आ जाती थी, जिससे पेट में लगे टाँकों में कसक होने लगती।

लगभग डेढ़ माह अस्पताल में रहने बाद वह घर आ सकी। उसका सबसे छोटा बेटा केवल सात-आठ महीने का था। पार्वती ने ही बड़े यत्न से उसकी और अन्य तीनों बच्चों की देख-भाल की। बार-बार पार्वती को घर की चिन्ता सताती थी, परन्तु शान्ति का कष्ट देखकर उसका मन पिघल-पिघल जाता था। उसके प्रति उसका समस्त क्रोध और द्वेष दुःख की आग में भस्म हो गया।

सरिता के पत्रों से उसे घर के समाचार मिलते रहे। मधु सरिता के साथ थी ही, अतः घर का सभी काम यथावत् चलता रहा। छुट्टियों में मनीष भी घर आ गया था। एक जुलाई को उसे दिल्ली वापस चले जाना था। उसके जाने का ख्याल आते ही पार्वती बेचैन हो उठी।

शान्ति को अस्पताल से आए दस-बारह दिन हो चुके थे। अब वह पूर्णतः स्वस्थ थी; परन्तु दुर्बलता के कारण थोड़ा-सा काम करने में भी थकावट का अनुभव करने लगती। हरिमोहन के पत्रों में निर्देश था कि बहू के ठीक होने पर अपने साथ यहीं ले आना। यहाँ उसे कुछ दिन आराम मिल जाएगा। अतः राममोहन का पूरा परिवार पार्वती के साथ मुरादाबाद आ गया।

राम की शादी के बाद उसके और परिवार के बीच जो दूरियाँ आ गई थीं, उन्हें इस दुःख ने समाप्त कर दिया। इस बार राम की यह वही पार्वती भाभी थी, जो आरम्भ में उसकी अपनी लाड़ली भाभी थी। उसकी सेवा और सद्भावना ने शान्ति का मन भी निर्मल कर दिया था। पहली बार उसने इस घर को अपना घर अनुभव किया।

इस बार तो पार्वती का बदला हुआ सा स्वभाव और व्यवहार देखकर सोमा को आश्चर्य भी हुआ और प्रसन्नता भी हुई। दो माह पूर्व की पार्वती बदल गई थी। बउआ जी-जैसी गम्भीरता उसके मुखमण्डल की गरिमा बढ़ा रही थी। हरिमोहन अचंभे में थे। सबसे ज्यादा प्रसन्नता कृष्णा जी को हुई। उनके लिए

तो जैसे उनकी भूली-भटकी बिखरी हुई गृहस्थी आज फिर जुड़ गई थी। हाँ, इस परिवर्तन के प्रभाव से मधु अछूती थी।

● ● ●

:७:

जुलाई का महीना। तीन-चार दिनों से रह-रहकर वर्षा हो रही थी। इस समय भी आकाश में गहरे-काले बादल छाए हुए थे। सड़कों के किनारे स्थान-स्थान पर कीचड़ इकट्ठा हो रहा था। मकान के चारों ओर की दीवारें सीलन से भरी थीं। कमरों में भी नमी थी।

बाहर सड़क पर थोड़ी चहल-पहल होने लगी थी। आँधी-पानी के तीव्र आवेग के कारण वर्षों पुराना एक बड़ा सा इमली का पेड़ चौराहे पर गिरा पड़ा था। वर्षा रुकते ही पड़ोस के बच्चे इमली तोड़ने के लिए काफी संख्या में जमा हो गए थे।

× × ×

दो महीने सरिता के साथ आनन्द से बिताकर मधु अब अकेलापन अनुभव कर रही थी। अब पार्वती मौसी आई। दिनेश भैया आ गए और छह प्राणी राम चाचा के परिवार के। सरिता का अपना समय भी अपना नहीं रह गया था। अतः मधु अपने घर पर ही कोई पुस्तक या पत्रिका पढ़ती रहती और बीच-बीच में उसका मन पिछली स्मृतियों में डूब जाता।

मनीष, वह, सरिता और गोपाल। हाँ, चारों ही तो साथ-साथ रहे। कितनी ही बार वे लोग स्टेशन रोड पर दूर तक घूमने निकल जाते थे। इन दो महीनों में नौ-दस तो पिक्चरें ही देख डालीं।

'राजहंस' में 'बरसात की रात' फिल्म देखने गए। वह और सरिता भाभी बीच में बैठी थीं। मधु के पास मनीष और सरिता भाभी के पास गोपाल बैठा था। उस दिन प्रथम बार उसने जाना कि मनीष कितना वाचाल है। सिनेमा देखते हुए वह लगातार बोलता जाता था और तीनों उसके व्यंग्यों पर खिलखिलाकर हँसते रहे। पहले कभी वह सिनेमा जाती, तो उसे निरंतर कमेंट्री बोलनेवालों, फिकरे कसनेवालों या सीटियाँ बजानेवालों पर बहुत क्रोध आता था। लेकिन उस दिन तो मनीष की बक-झक में उसे भी आनन्द आया। उसने अनुभव किया, सर्कस हो या सिनेमा या कोई और मनोरंजक कार्यक्रम हो, सुखद साथ का भी अपना महत्त्व है।

उस दिन के बाद तो मनीष की चुहलबाजियाँ और छेड़छाड़ निरन्तर चलने लगी। कई बार वह रूठ जाती तो परिहास के स्वर में सरिता कहती, "अभी से रूठोगी रानी, तो जिंदगी कैसे चलेगी? बीच रास्ते में कोई साथ थोड़े ही छोड़ा जाता है।"

"भाभी मैं घर चली जाऊँगी। तुम बड़ी वो हो। मुझे ये सब बातें अच्छी नहीं लगतीं।" तुनकती हुए मधु कहती।

मधु की बाँह पर चिकोटी काटते हुए सरिता कहती, "चली कहाँ जाओगी? जाने देंगे तब न। क्यों मनीष भैया!"

शरारत से आँखें नचाते हुए सरिता मनीष की ओर देखती। फिर मधु को गम्भीर बनी देखकर उसकी मनुहार भी करती, "अच्छो मधु, रूठो मत, अब कुछ नहीं कहूँगी।"

धीरे-धीरे मनीष मधु के निकट आता गया। एक दिन सरिता नहाने गई थी। कमरे में मधु अकेली ही थी। मनीष ने आकर मधु का हाथ पकड़ लिया। बोला, "सच तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता।"

मधु सकपका गई। हाथ छुड़ाती हुई बोली, "ऐसी बातें न कीजिए। अभी आपको डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करनी है और मैं भी डाक्टरी पढ़ना चाहती हूँ। पापा की बहुत इच्छा है मुझे डाक्टर बनाने की। डाक्टरी पढ़ ली, तो आपका भी कुछ हाथ बँटाती रहूँगी।"

मधु के शब्दों में मौन स्वीकृति ध्वनित हो रही थी।

"चाहता तो मैं भी हूँ कि मेरी पत्नी डाक्टर हो, परन्तु तुम्हारी पढ़ाई में तो अभी बहुत दिन लगेंगे और मेरी पढ़ाई दो वर्षों की और है। तब तक तुम्हारी राह देखूँगा।" कहते हुए उसने मधु का हाथ कसकर दबा दिया।

सरिता ने कमरे में आते-आते मनीष का अन्तिम वाक्य सुन लिया था। आते ही बोली; "डाक्टर साहब, बड़े आदर्शवादी बन रहे हो। आदर्श के साथ प्रेम-वेम कैसे चलेगा? इसका क्या....यह बेचारी तो दो क्या दस बरसों तक प्रतीक्षा कर लेगी। परन्तु तुम कहाँ रुक सकोगे। अच्छा है, अम्माजी के आने पर चट मँगनी पट ब्याह हो जाय। फिर की तो फिर ही हो जाती है।"

"डियर भाभी, अम्मा से बातें कर लेना, लेकिन अभी के लिए नहीं। मेरी पढ़ाई पूरी हो जाने दो।" सरिता के दोनों कन्धे पकड़कर बड़े स्नेह और कृतज्ञता के भाव से उसे देखते हुए मनीष बोला।

"अच्छा, तुम्हारी मर्जी यही है, तो यही सही।" कहकर सरिता काम में लग गई।

× - × ×

मधु असमंजस में थी। उसके लिए तो उसकी सारी सहज दुनियाँ एकदम बदल गई। इस सबकी तो उसने कल्पना भी न की थी। मनीष के सान्निध्य का आकर्षण उसे बार-बार खींचता था और वह विवश सी उधर से मन को बचाए रखने की कोशिश कर रही थी। उस घटना के बाद उसने स्वयं को सामान्य मनःस्थिति में रखने का बहुत प्रयत्न किया। फिर भी, अनेक कल्पनाएँ मन में टकरातीं और वह विचलित-सी हो उठती थी।

पिता की उस पर अत्यधिक ममता थी और माँ की प्रवृत्ति धीरे-धीरे आध्यात्मिकता की ओर बढ़ रही थी। यही देखकर उसने निश्चय किया था

कि वह विवाह नहीं करेगी। डाक्टर बनकर अपने साथ ही माँ और पापा को रखेगी तथा असहायों और निर्धनों की सेवा करेगी।

अकस्मात् कैसे वह मनीष से विवाह की स्वीकृति दे बैठी? यह क्या किया?....अब कैसे वह मनीष से इन्कार करे....कैसे भाभी को समझाए कि जो आप सोच रही हैं वह नहीं हो सकता। वह...वह....शायद उस सबके लिए नहीं बनी है।

जब तक वह सरिता के पास रही, उसके पापा प्रतिदिन अपने व्यस्त कार्य-क्रम में से भी कुछ समय निकालकर 'मधु बेटे'...'मधु बेटे' कहते हुए आते और हँसते बोलते प्रसन्न रहते हुए देखकर चले जाते थे। वह विवाह कर लेगी, तो कैसे रहेंगे पापा उसे बिना देखे हुए...। क्यों नहीं वह मनीष से स्पष्ट 'नहीं' कह पाई? अब कैसे कहे...क्या कहे...? एक-दो दिन तक वह इसी ऊहा-पोह में रही। सरिता ने उसके मन का भेद ले लिया और उसे तरह-तरह से समझाया।

"मधु बीबी, कहाँ के चक्कर में पड़ी हो...अपनी ओर से ही सब सोच लिया। चाची जी, चाचा जी की ओर से सोचकर देखो। कितने प्रसन्न हो जाएँगे।...कितनी खुशी होगी उन्हें....। और रहना तो यहीं है। मनीष भैया दिल्ली से पढ़ाई समाप्त करके यहीं अपनी क्लीनिक खोलेंगे....घर पर ही रहेंगे। उन्हें बाबू जी नें नौकरी करने को बिल्कुल मना कर दिया है...और जो तुम नौकरी करके माँ-बाप को पालने की सोच रही हो..उस जिन्दगी को यह पीढ़ी नरक मानती है...और चाचा जी की दो-तीन किताबें ही कुबेर का खजाना है...उन्हें और क्या चाहिए। रिटायर होने पर तो उन्हें पुस्तकें लिखने के लिए समय भी अधिक मिल जाएगा...आसन पाटी छोड़ो, चलो, कहीं घूम आएँ। झटपट मुँह-हाथ धोकर तैयार हो जाओ।"

मधु चाहती थी, किसी बोझ से मन को न दबने दे। लेकिन झील के निश्चल नीर को जैसे किसी ने गुलाब की पंखुड़ी मात्र से स्पर्श करके उद्वेलित कर दिया हो, वैसी ही उसकी दशा थी। भावनाओं की लहरें, एक के बाद

एक आकर उसको चंचल बना रही थीं। ऊपर से वह शान्त थी। अपने सौम्य शिष्ट व्यवहार के कारण उसने सदैव ही बड़ों से स्नेह पाया है। प्रशंसा पाई है। अपने घर में रहते हुए माँ और पापा के सुख-दुःख को सूँघ लेती।

माँ का कोई भी व्रत-उपवास होता, अल्हड़ मधु माँ के बार-बार मना करने पर भी उनके लिए फलाहार का प्रबन्ध कर देती। सरिता के पास रहो तो दद्दा जी अर्थात् कृष्णा जी के सन्देश का माध्यम मधु ही बनी रही। हरि काका की सुख-सुविधा का भी वह पूरा-पूरा ख्याल रखती। खाली समय में तरह-तरह से घर को अलंकृत करने में सरिता की सहायता करती। नए-नए प्रसाधनों से उसका शृंगार करके स्वयं ही उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो उठती थी।

उसकी इस प्रसन्नता और भोली पुलक का प्रभाव सरिता पर पड़ता ही था। इस प्रकार वह अपने आसपास के वातावरण पर छा जाती थी। यही हँसती-खिलखिलाती आनन्द देने वाली मधु अब अपने में ही खोई-खोई सी रहने लगी। कुछ सोच-सोचकर ही व्यथित हो उठती। जब भी वह खाली बैठती उसका मन इधर-उधर भटकने लगता। अपने ही मानस-मन्थन में उलझी कभी प्रसन्न और कभी दुखी हो उठनेवाली मधु बहुत चाहते हुए भी सामान्य नहीं हो पा रही थी। ऐसा लगता, वह धीरे-धीरे अपने परिवेश से कटकर आत्मलीन सी होती जा रही है। कल की अल्हड़ मधु विवाह और प्रेम की चर्चा होते ही आज मानो एक समझदार युवती हो गई हो। पापा के घर में आते ही, अब वह प्रसन्न होकर दौड़ती हुई नहीं आती, आवाज देकर उसे बुलाना पड़ता है। माँ से भी विशेष बात नहीं करती। कॉलेज़ से लौट-कर पुस्तकें और कमरे का एकान्त ही उसे प्रिय लगने लगा।

दिल्ली से मनीष के पत्र सरिता के नाम आते रहे। राममोहन का परिवार आगरा चला गया, तब पार्वती और सरिता को कुछ अवकाश मिला। अवसर देखकर सरिता ने चर्चा छेड़ी। "माँ जी, कितने रिश्तेवाले आ रहे हैं। अब मनीष भैया का सम्बन्ध भी कहीं ठीक कर लीजिए न।"

"बहू, बात तो तुम्हारी ठीक है। लेकिन मनीष अभी राजी नहीं होगा। जब भी बात चलती है वह हमेशा टाल जाता है। मैं भी सोच रही थी, पढ़ाई पूरी कर ले, तो कोई अच्छी लड़की देखकर बात तय की जाय।"

"लड़की तो माँ जी देखी-दिखाई है। फिर मनीष भैया भी तैयार हैं। आप 'हाँ' कह दें तो साल दो साल काटना कोई बड़ी बात नहीं है।"

"मधु की बात कह रही हो बहू!"

"हाँ माँ जी, मनीष भैया स्वयं ही चाहते हैं। और····लड़की भी, घर भी, सब देखा-भाला है।"

सरिता की बात सुनकर पार्वती कुछ देर मौन रही। कुछ क्षणों के लिए उसे अपना अतीत झकझोर गया। उसी ने तो सोमा का विवाह करवाया था। बदले में क्या मिला···? दिमाग को परेशानी हुई, वह अलग से। लेकिन···· अब तो सब कुछ ठीक चल रहा है। वह क्या सोचे, क्या कहे? देखी-परखी हुई लड़की। लड़का बाहर पढ़ रहा है। जब स्वयं ही पसन्द करके सरिता से कह गया है तो 'न' कर देने का प्रश्न ही नहीं उठता।···मन में दहेज की भी बात आई। सुशील बाबू क्या दे देंगे····रखा ही क्या है उनके पास देने को। मास्टरी में पैसों का दम कहाँ····लेकिन कहीं से ज्यादा दान-दहेज ले लिया और लड़की मनीष को पसन्द न आई तो···?

पार्वती के मन की यह दुविधापूर्ण स्थिति, असमञ्जस की दशा उसके बदले हुए स्वभाव के कारण थी। आगरा जाने से पहले उसके सामने यह प्रश्न होता तो वह तुरन्त 'हाँ' या 'ना' में उत्तर दे देती। लेकिन अब वह अपने स्वार्थों की सीमा से कुछ बाहर आकर बच्चों के सम्बन्ध में सोचने लगी थी···परिवार के सुख के सम्बन्ध में सोचने लगी थी। इसी का परिणाम था कि उसने मन से स्वीकार कर लिया कि मनीष की इच्छा ही उसकी इच्छा है। उसने अपनी स्वीकृति देते हुए सरिता से कहा, "तुम लोग समझदार हो, स्वयं ही देख-समझ लो। तुम लोगों की इच्छा में ही मेरी इच्छा है।"

अनुकूल अवसर देखकर एक दिन सरिता ने सोमा से भी मधु के विषय में कह डाला। "चाची जी, मधु अब केवल आपकी ही नहीं है। हम उसे आपसे इस घर की बहू के रूप में माँग रहे हैं।"

सरिता की बात सुनकर सोमा प्रेम से गद्गद हो गई। उसकी आँखें भर आईं। कुछ मधु के बिछुड़ने का गम था, कुछ आँखों के सामने रहने की, पास ही रहने की खुशी भी थी। अपने ही भावों में लीन-सी, विभोर-सी कभी पुलकित और कभी उदास मधु का चेहरा उसकी आँखों में घूम गया। कारण भी समझ में आ गया।

कृष्णा जी के सामने भी चर्चा हुई। इस प्रसंग पर घर के सभी व्यक्तियों में समरसता की स्थिति मालूम दे रही थी। मानो कोई निश्चय ही दोहराया जा रहा हो और कोई नई बात न हो। सभी ने सहज भाव से इस प्रसन्नता में योग दिया। यह निश्चय किया गया कि मनीष की पढ़ाई समाप्त होने पर ही विवाह सम्पन्न किया जाय।

● ● ●

: ८ :

दिल्ली से प्रति सप्ताह सरिता के नाम मनीष के पत्र आते रहे। वह निरन्तर मधु के अधिक से अधिक समाचार जानने को उत्सुक रहता था। अतः पत्र की भाषा में उत्कंठा और व्यग्रता उभर आती थी।

दिसंबर में- बड़े दिन की छुट्टियों में, मनीष घर आया। उस समय भी उसे पढ़ाई का काम बहुत था। बार-बार वह सरिता से अनुरोध करता कि किसी बहाने से ही मधु को यहाँ बुलाएँ, बात करें। मधु अपनी सीमाओं में कुछ और सिमट गई थी। अतः मनीष को कोई प्रत्युत्तर न मिल सका। वह अनमना-सा पढ़ने में व्यस्त रहा और मधु से बात न कर सका।

छुट्टियाँ समाप्त हो जाने पर मनीष दिल्ली जाने की तैयारी कर रहा था। तभी सुशीलचन्द्र बड़े सुन्दर ढंग से बाँधा गया एक पैकिट लेकर आए। सोमा ने मनीष के लिए मिठाई बनाकर भेजी थी। उसके साथ ही एक सुन्दर सा पुलोवर भी था। मधु ने रात-दिन परिश्रम करके इन छुट्टियों में ही वह स्वेटर मनीष के लिए तैयार किया था। उस स्वेटर के खिले हुए फूल और सुन्दर चटख नारंगी रंग देखकर मनीष का मन भी खिल गया। उसने तुरन्त ही वह स्वेटर पहन लिया और शीशे के सामने खड़ा होकर देखने लगा कि उस पर कैसा फबता है। और सचमुच उस स्वेटर को पहने हुए वह बहुत ही सुन्दर दिख रहा था। सरिता ने चुपचाप पीछे से आकर मनीष के बालों में एक काजल का टीका टिका दिया।

दशहरे की छुट्टियाँ भी यों ही बीत गईं थीं। इस बार तो मनीष ने बहुत चाहा कि कुछ देर के लिए मधु से बातें करके आश्वस्त हो, कुछ मन भर ले, कुछ मन की कह सुन ले। लेकिन, मधु की चुप्पी से उसका मन बुझने-सा लगा था। ऐसी मनःस्थिति में उसे मधु का यह प्रेमोपहार मिला। दुविधा के झीने आवरण को आनन्द की एक लहर ने तोड़ फेंका।

गाड़ी का समय हो रहा था। वह चलने को तैयार था। तभी सरिता, ने छेड़ा, "मनीष भैया, देखा कितना सुन्दर प्रेम-पत्र मिला है", और शरारत भरी नजरों से देखते हुए उसके मुख में एक लड्डू ठूंस दिया। मनीष का मुँह आनन्द और लज्जा के मिश्रित आवेग से आरक्त हो गया। घर के सभी बुजुर्ग खड़े थे। वह क्या बोलता। मुस्कराकर मौन ही रहा।

दिल्ली पहुँचकर मनीष के मन को शान्ति न मिली। जितना ही वह मधु को भूलने का प्रयत्न करता उतना ही वह उसके मन-मस्तिष्क पर छाने लगी

थी। उसे न देख पाने के कारण उसकी मिलन–उत्कंठा प्रबल होती जा रही थी।

× × ×

दिल्ली में मनीष की एक साथिन मृणालिनी घोष थी। वह कक्षा में प्रायः उसी की ओर देखा करती और वह था कि उसे मधु के अतिरिक्त किसी का आकर्षण नहीं खींच सका था। इस बार घर से लौटने पर वह विचित्र-सी मनःस्थिति में था। उसे मृणालिनी की आँखों में, उसके मौन-निमन्त्रण में मधु की आभा दिखलाई पड़ने लगी। जब भी मृणाल से उसका सामना होता, उसका आकर्षण उसे अवश-सा करने लगता। शरीर में स्फूर्ति का आभास होने लगता और उसे देखकर ही वह कुछ प्रसन्न हो जाता। जब भी दोनों मिलते, एक-दूसरे को 'विश' करते। धीरे-धीरे निकटता बढ़ती गई। सम्पर्क की शृंखला बढ़ती गई। पुस्तकों का आदान-प्रदान होने लगा। जब भी दोनों को अवकाश मिलता, साथ-साथ घूमने और पिक्चर देखने के अपॉएँण्टमेंट होने लगे। मनीष की सौम्यता और गम्भीरता पर मृणाल मुग्ध थी। और मृणाल की सुरुचिपूर्ण वेश-भूषा, बातचीत में बच्चों जैसा भोलापन, विचारों की सरलता और खुलापन, उसके व्यवहार की सादगी और निष्कपटता आदि सभी गुणों की मनीष भूरि-भूरि प्रशंसा करता।

वह स्वर्गीय मेजर वी॰ सी॰ घोष की इकलौती बेटी थी। विगत युद्ध में मेजर घोष देश के काम आ गए। मरणोपरान्त उन्हें वीर-चक्र से विभूषित किया गया था।

विगत एक वर्ष से पिता के स्नेह से वञ्चित हो जाने पर मृणाल बहुत उदास रहा करती थी। घर में तो माँ को खुश रखने के लिए वह हँसती-मुस्कराती खिली बहार-सी आती और घर से बाहर निकलते ही भीड़-भरी राहों और बाजारों की चहल-पहल में भी वह बहुत सूनापन अनुभव करती थी। अपने को पूरी तरह पढ़ाई में डुबाकर भी वह मन के इस रीतेपन से चाहते हुए भी छुटकारा नहीं पाती थी। उसकी आँखों का यह रीतापन संवेदनशील मनीष से भी छिपा न रहा। आरम्भ में तो किञ्चित् सहानुभूति और उपकार

की भावना ही उसके मन में आई और धीरे-धीरे···। कितना विचित्र है मानव-मन भी। सीधा-सादा आदमी भी आदर्श की लाठी टेकते-टेकते मन्दिर में पहुँच जाता है मन को निष्काम करने की कामना लेकर। पाप-पुण्य की दुविधा से ऊपर उठने के लिए प्रयास करता है। बड़े-बड़े मूल्यों की दुहाई देता है। किसी के कष्टों में हिस्सा बँटाकर स्वयं ही महानता का अनुभव करता है···और जब कष्टमुक्त व्यक्ति, पंगु व्यक्ति बिना सहारे के चल पड़ता है तो उपकार-कर्त्ता का अपना अहम् जागृत हो जाता है···उसी के बल पर तो वह चला है···उसके जीवन पर उसका अधिकार है, पूर्णाधिकार···। वाह री गति···वाह री मति··· वाह री नियति···मुक्ति की आकांक्षा में मन्दिर में साधना-रत साधक वरदान मिलने के समय फिर जीवन माँग लेता है। अपने माया-जाल में स्वयं ही उलझ जाता है···फिर मनीष तो स्वयं रोगी था, भूखा था, विषाद को ओढ़े हुए था··· वह दूसरे का कष्ट कैसे पचा पाता। उसकी हार्दिक कामना थी कि मधु के साथ उसका प्रेम-पत्रों का क्रम चलता रहे। वे प्रेम-विवाह का आनन्द भोगें। कुछ नए ढंग से, नए रंग से जीवन का आरम्भ करें···परन्तु, अकस्मात् ही मधु के गम्भीर हो जाने की स्थिति ने उसकी इस प्रेम-परिकल्पना पर, मनीष के उत्साह पर तुषारपात कर दिया। वह मन-ही-मन खीझ उठता, झुँझला जाता। दो बार घर जाने पर भी उसे मधु की ओर से मौन ही मिला। वह स्वयं उसके घर भी पहुँचा, फिर भी मधु सामने आने में झिझकती रही और कुछ न बोली। अतः पिछली दो छुट्टियों में वह घर ही न गया। घर पत्र भेज देता कि किसी यात्रा में बाहर जा रहा हूँ अथवा विशेष प्रयोगों के लिए पढ़ाई में समय ज्यादा देना पड़ता है···छुट्टी मिलने पर घर आऊँगा·····।

और अब तो एक सहारा उसे मिल गया था। उसकी छुट्टियाँ मृणाल के यहाँ बीतने लगीं। यहाँ तक कि दशहरे की छुट्टियों में श्रीमती घोष मृणाल को मनीष की देख-देख में छोड़कर अपने एक सम्बन्धी के यहाँ बनारस चली गईं और पूरे महीने भर बाद लौटीं।

मनीष के शिष्ट व्यवहार और प्रेमी स्वाभाव पर श्रीमती घोष भी मुग्ध थीं। उन्हें उस पर बहुत विश्वास हो गया था। होता भी क्यों न?

अगस्त में श्रीमती घोष का रक्तचाप गिर गया था और डाक्टरों ने उनके लिवर में भी खराबी बतलाई थी। उन्हें पूरी तरह आराम करने को कहा गया। उन दिनों मनीष ने कई बार मृणाल की अनुपस्थिति में भी उनकी सेवा-शुश्रूषा की। श्रीमती घोष मनीष को अपने बेटे के समान ही स्नेह करने लगीं। जब मनीष को छुट्टी रहती, तब उनके आग्रह पर उन्हीं के यहाँ भोजन भी करता था। श्रीमती घोष कोई भी नया व्यंजन बनातीं तो फोन पर मृणाल से कह देतीं कि मनीष जरूर आए। उसके सम्पर्क से वह मृणाल के प्रति भी निश्चिन्त होने लगीं।

मृणाल के प्रेम और श्रीमती घोष के स्नेह में मनीष कुछ ऐसा डूबा कि अब उसे घर जाने की आवश्यकता ही नहीं महसूस होती थी।

× × × ×

अकस्मात् एक दिन सरिता की तबीयत खराब हो गई। स्थिति ऐसी थी कि इलाज के लिए उसे दिल्ली ले जाना आवश्यक हो गया। वह माँ बननेवाली थी। मुरादाबाद में डाक्टरों ने उसकी दशा असामान्य बतलाई और दिल्ली ले जाने की राय दी। पार्वती और दिनेश एक टैक्सी में सरिता को लेकर दिल्ली गए। मनीष को टेलीग्राम से सूचित कर दिया था, अतः वहाँ इमर्जेन्सी वार्ड में ही मिल गया। सरिता ने एक स्वस्थ और सुन्दर बेटे को जन्म दिया और दस दिन के बाद उसे अस्पताल से छुट्टी मिली गई।

जब तक सरिता दिल्ली रही, मृणाल ने उसकी बहुत सेवा की। मृणाल के साथ-ही-साथ उसकी दो साथी डाक्टरों विजय बत्रा और नीलम मेहरा; ने भी बड़े स्नेह और सम्मान से उसकी देख-भाल की। मृणाल ने एक छोटी सी सुन्दर अटैची में नवजात शिशु के लिए रंग-बिरंगी पोशाकें और खिलौने भेंट किए।

चलते समय सरिता ने अनुरोध किया, "डाक्टर साहब, हम लोगों पर आपके बहुत एहसान हैं। कभी आप मुरादाबाद आइए; हम लोगों को खुशी होगी।"

"भाभी जी, आप मुझे 'डाक्टर' नहीं, केवल 'मृणाल' ही कहें। आपको मुझे निमन्त्रित करने की अवश्यकता नहीं, पप्पू के कारण मैं अवश्य ही

आऊँगी।" यह कहकर उसकी गोदी में सो रहे नन्हें पप्पू को मृणाल ने चूम लिया।

सरिता ने मनीष से कहा, "मनीष भैया, कभी मृणाल दीदी को अपने घर जरूर लाइएगा।"

मनीष जैसे कुछ शरमा गया। वह कुछ बोला नहीं। उसकी यह चेष्टा सरिता को बहुत प्यारी लगी। उसने कहा, "मनीष भैया, डाक्टर होकर भी शरमाते हो।" फिर गोद में लिए मुन्ने को हिलाती हुई बोली, "मुन्ने की बुआजी को आना ही पड़ेगा।" और वह गाड़ी में बैठ गई।

● ● ●

: ९ :

पिछले दो दिनों से निरन्तर वर्षा हो रही थी। तल्लीताल के किनारे नावों का जमघट था, लेकिन कोई घूमनेवाला नहीं था। नैनी-झील में प्रायः पंख खोलघर तिरती रहने वाली, राजहंसिनी सी सफेद पाल-वाली नौकाएँ विश्राम कर रही थीं। तल्लीताल में अस्तबल में बँधे घोड़े और टट्टू कभी-कभी जोर से हिनहिना उठते होंगे, क्योंकि न तो घुड़सवारी के शौकीन लोग झील का चक्कर लगाकर घुड़सवारी का आनन्द ले सकते थे, और न ही चीना-पीक और टिफिन टॉप पर भ्रमण के लिए जाने वाले यात्री दिखलाई पड़ते थे।

नैनीताल में मई-जून के महीनों में शाम के समय, फ्लैट पर लोगों की भीड़ दिखलाई देती है। एक दूसरे से मिलते, खुश होते और परिचित-अपरिचित व्यक्तियों के चेहरे फूलों की तरह दिखलाई पड़ते हैं। मानों इन व्यक्तियों की जिन्दगी में खुशियाँ-ही-खुशियाँ हैं। कमल की पँखुड़ियों से जैसे जल की बूँद फिसल जाती है, ऐसे ही तो पहाड़ों की रंगीन शामें जीवन में दुःख के अस्तित्व अनुभूति को झटककर दूर गिरा देती हैं···परन्तु दुःख के बोझ की जिन्दगी कहाँ झटक पाती हैं ?

एक-दो दिन की भयंकर वर्षा सब कुछ तो बदलकर रख देती है। क्लब और सिनेमाघर की भीड़ छँट जाती हैं। व्यवसायी प्रयत्न करते हैं कुछ पाने का। मजदूर प्रयत्न करते हैं कुछ करने का। और····यात्री····टकटकी लगाए वर्षा के रुकने की प्रतीक्षा करते हैं। कीचड़ और पानी से लथ-पथ मार्ग,झील के किनारे बँधी सूनी नौकाएँ, सड़क के किनारे भींगती बेंचे, सूने बाजार, अस्त-बल में हिनहिनाते घोड़े और टट्टू तथा फ्लैट धुल-पूँछकर साफ हो गया चमकीला लेकिन सूना-सा फर्श····सभी तो ठहरे-से, सहमे से हो उठते हैं।

यहाँ के लोग तो इस जीवन के अभ्यस्त हैं, परन्तु जो लोग केवल प्रमोद और भ्रमण के लिए आए हैं, उनके मन पर वातावरण की धुंध और घुटन छाने लगती है। उस दिन विचित्र सी घुटन दिल और दिमाग पर छाने लगी थी।

मधु सोच रही थी—ऐसे मौसम में कैसे रहते होंगे यहाँ के लोग। अच्छा हुआ दिनेश भैया ने उनके लिए लंघम हाउस में कमरा बुक कराया। लंघम हाउस की उपयोगिता यही है कि यहाँ से झील के दृश्य, तल्लीताल और मल्लीताल के प्रमुख दृश्यों का आनन्द लिया जा सकता है। सड़क के किनारे बनी बेंचों पर बैठकर प्रायः सैलानी लोग वहाँ के दृश्यों का आनन्द लिया करते हैं; फिर भी, वहाँ अकेला व्यक्ति निरन्तर बैठा नहीं रह सकता। मन ऊबने लगता है। हाँ, लंघमहाउस से ताल के चारों ओर का दृश्य निहारते हुए अकेले भी घंटों बैठा जा सकता है।

मनीष अभी सो रहा था। वर्षा रुक गई थी और कुछ धूप निकल आई थी। वर्षा के बाद यह धुली हुई धूप आकर मन को पुलकित कर रही थी।

वर्षा ने सारी वनस्पतियों को धो-पोंछकर साफ कर दिया था। जगह-जगह खिले रंग-बिरंगे फूलों का प्रच्छन्न सौन्दर्य मन को मोहे ले रहा था। ताल की ओर से दृष्टि घुमाई। बस-स्टैंड से आते-जाते कुलियों के कपड़े, कई दिन से भींगे हुए से लग रहे थे। उसे भी सन्तोष हुआ कि अब इन्हें इस धूप से कुछ राहत मिलेगी, इनके गीले कपड़े सूख सकेंगे। कुछ घरों में तो खाना भी नहीं बन रहा था, आज उन्हें थोड़ी मजदूरी मिलेगी और आज की रोटी के लिए तो वे निश्चिन्त हो ही जाएँगे। इस गुनगुनी धूप में सैलानी घूमने निकल पड़े थे। टट्टू-वालों की चहल-पहल भी बढ़ गई थी।

मधु का चेतन मन सजग था और वह चारों ओर के सुन्दर-असुन्दर दृश्यों के ताने-बाने को देख रही थी। उन्हीं पर सोच भी रही थी। अपना ध्यान करते ही उसे सिहरन होने लगती। वह समझ नहीं पा रही थी कि जो मनीष कभी विवाह के लिए अत्यन्त व्यग्र था, उत्सुक था, अब अचानक इसे हो क्या गया है ? उसने स्वयं ही तो उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा था। वह तो केवल स्वीकृति देने भर की अपराधी है। जब तक वह मौन रही, वह मनुहार करता रहा, उस पर दबाव भी डालता रहा और जब सब कुछ तय हो गया, तो अचानक उसका मन क्यों बदल गया !

उसका अपराध तो इतना ही था कि मनीष के बुलाने पर वह उसके पास नहीं जाती थी। विवाह की बात तय हो जाने के बाद विवाह से पूर्व उससे मिलने पर उसे लज्जा का अनुभव हो जाता था। इसमें तो मनीष को बुरा मानने की कोई बात न थी। समाज है···इसकी मर्यादाएँ हैं···परम्पराएँ हैं, उनका पालन करना ही पड़ता है···और विशेष रूप से लड़कियाँ अपनी सीमाओं में, संस्कारों में इतनी जकड़ी होती हैं कि उनकी तनिक-सी स्वतन्त्रता को, सहज ही उच्छृंखलता की संज्ञा दे दी जाती है। मधु का दोष तो यही है कि वह मनीष को प्रेम करते हुए भी, विवाह के पूर्व उसका प्रदर्शन न कर सकी।

मनीष से उसे बहुत आशाएँ थीं, क्योंकि वह पढ़ा-लिखा है, उदार है, वह उसके सामाजिक और मानसिक परिवेश को समझ लेगा, मधु यही सोचती थी।

लेकिन मनीष इतना क्रोधित हो गया कि इस बार फाइनल परीक्षा होने पर भी वह विवाह के लिए तैयार न था। सरिता भाभी ने कह-सुनकर सब करवाया, सारे उत्सव में वह उदासीन सा रहा। दिनेश भैया और गोपाल को बहुत उमंग थी उसके विवाह की। दिनेश भैया ने ही तो विवाह के पूर्व ही यहाँ नैनीताल में कमरा बुक करवा दिया था। मधु ने सोचा था, सबके सामने न सही, अकेले में ही शायद मनीष अपना क्रोध निकाल लेगा। यदि उससे अनजाने में कोई भूल हो गई हो, तो वह क्षमा माँग लेगी।

और···यहाँ नैनीताल आने पर दो दिन से वर्षा होती रही। मनीष बिस्तर पर लेटा हुए अंग्रेजी उपन्यास पढ़ता रहा। साथ ही, उसकी चाय और सिगरेट का सिलसिला भी चलता रहा। कई बार मधु उसके पास आकर बैठी···उसने चाहा, मनीष कुछ बोले। पर मनीष उदासीन ही रहा। एक-दो बार तो परिहास में मधु ने उसके मुँह के सामने से पुस्तक हटाकर जब भी उसकी आँखों में झाँकना चाहा मनीष की दृष्टि में कुछ भयानकपन देखकर वह सहम गई। उसके इस व्यवहार से वह कुछ निराश-सी हो उठी। अपना मन बहलाने के लिए उसने भी किताबों का सहारा लिया। लेकिन, किताबें भी उसका साथ न दे सकीं।

उस दिन रात में न उसका मन स्थिर हो पा रहा था, न उसे नींद आ रही थी। उसे निरन्तर करवटें बदलते देख मनीष ने उसे नींद की गोलियाँ पकड़ाते हुए कहा, "इनमें से एक खा लो और सो जाओ।"

"मुझे गोली खाने की आदत नहीं। ऐसे ही सो जाऊँगी।" मधु बोली।

"आदत नहीं है तो क्या हुआ, बना लो। एक गोली में जान नहीं चली जाएगी। मर भी गई तो कौन सा दुनियाँ का काम रुक जाएगा।"

मनीष की आवाज में उलाहना-सा था। उसकी आँखों से जैसे अंगारे बरस रहे थे।

"भगवान् के लिए मुझे एक बार तो बता दो कि आखिर क्यों इतने नाराज हो।" अनुनय के स्वर में मधु ने कहा।

"अब मेरी सूरत तुम्हें भद्दी दिखाई दे रही है। शक्ल से मैं तुम्हें नाराज दीखता हूँ। ऐसा ही था तो पहले ही सोच लेतीं। बहुत घमंड था तुम्हें अपने पर।"

"मैं आपके चरणों की सौगन्ध खाकर कह सकती हूँ कि मैंने आपको अपना देवता माना है। आप मेरे लिए पूज्य हैं। आपके प्रति अभिमान का प्रदर्शन क्या, भावना भी मेरे लिए पाप है।"

पैर पटकते हुए मनीष ने कहा, "बस करो बहुत नाटक हो चुका, मुझे तुम्हारी जैसी बारहवीं सदी की सती साध्वी पत्नी नहीं चाहिए।"

"कैसी बात कह रहे हैं···अब तो मैं आपकी हूँ चाहे जैसे रखिए। यदि आपकी कोई विशेष इच्छा है, पता तो चले···कुछ कहिए तो सही।"

इस वार्तालाप के क्रम में मनीष की आँखों का भाव अचानक बदला और उसने मधु को कसकर आलिंगन में बाँध लिया। बहुत दिनों का भूखा आदमी जैसे खाने की थाली पर टूट पड़ता है, ऐसा ही कुछ मनीष के साथ था।

मनीष ने मधु की कनपटियों, कपोलों, ओठों और गर्दन के न जाने कितने चुंबन लिए। मधु गर्दन झटकती रही। अपनी उलझन और ऊब को छिपाकर मनीष का ख्याल करके वह कुछ प्रसन्न दिखने की भी चेष्टा करती रही। उधर मनीष की भुजाओं की जकड़ तनिक भी ढली न हुई कि वह कुछ सँभल जाती···। इधर मनीष की वासनाओं का आवेग मानो अबाधित हो फूट पड़ा था। मधु को आत्मसात् कर लेने को वह व्याकुल-सा था।····उस समय तो मनीष के मन की कामनाओं का ज्वार और मधु का शरीर···बस इन दोनों का ही अस्तित्व एक हो रहा था।

मनीष के भटकते मन का आवेग उसका अधिक देर तक साथ न दे सका। ···मधु की सुडौल देहयष्टि···उसके नवयौवन की मादकता में भी वह कुछ क्षणों के लिए ही स्वयं को भुला सका था। उसके मन में कोई चोर था। और वह चोर की तरह····अपने हृदय की धड़कनों की आवाज से भी मानों चौंक उठता था।···बार-बार उसका हाथ मधु के कण्ठ की ओर चला जाता था···। क्षण भर को भयानक-सी तरंग मस्तिष्क में कौंधी और वह स्वयं को संयत कर लेने

की चेष्टा करने लगा। उसके मुँह पर झलक आए भावों के उतार-चढ़ाव से मधु के मन में भी कुछ भय-सा समाने लगा और वह स्वयं मनीष की पकड़ से मुक्त होने के लिए छटपटाने लगी।

नैनीताल की बरसाती ठंड में भी, पसीने से लथपथ हुआ मनीष मधु को छोड़कर शिथिल-सा बिस्तर पर पड़ गया। मधु के अंगराग की मोहक गन्ध उसके नासिका-रन्ध्रों से फैलती हुई दिमाग तक छा गई थी। पर···पर अपने मन की उलझन वह किससे कहे, कैसे कहे, यही विवशता उसे सामान्य से असामान्य बनाए जा रही थी।

अतीत में जो कुछ हुआ था, जो कुछ छिपा था, वह उसे भूल नहीं पा रहा था। अपने अपराध के लिए वह मधु को ही दोषी मानता था। यदि भावनाओं के आवेग में बहते मनीष को मधु ने सहारा दिया होता, तो क्यों उसे मृणाल के चक्कर में फँसना पड़ता? यदि कभी-कभी वह उसका मन बहला दिया करती तो क्या···। मधु की आँखों का सौन्दर्य ही तो उसे मृणाल में दिखलाई पड़ा था। वह कभी-कभी पत्र लिख दिया करती, तो उसका चित्र देखकर, उसकी स्मृतियों में डूबकर ही वह समय काट लेता।···वह सब न घटित होता, जो अनचाहे हो गया। अब तो जब भी वह मधु की आँखों में झाँकने की चेष्टा करता है, उसे मृणाल दिखाई देती है···हँसती हुई मृणाल दिखती है···मुँह चिढ़ाती हुई मृणाल दिखती है···और मन करता है, उसका गला घोंट दे···।

बार-बार प्रयत्न करने पर भी वह मृणाल को क्यों नहीं भूल पाता। अब एक ही उपाय सूझता है···मधु का ही अन्त कर दे····न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी····। नींद की गोलियाँ उसे खाने को दी थीं, वह उसने अपनी अटैची में रख दी हैं और अटैची में ताला डाल दिया है।···दम ही कितना है उसमें··· उसके गले पर अँगूठा रखकर दबाने भर की देर है। क्यों न आज ही सारी व्यथा समाप्त कर दे। उसकी आँखों में एक दृढ़ निश्चय-सा तैर आया। उलझन के इन क्षणों में एक के बाद दूसरी सिगरेट पीते हुए उसने ऐश-ट्रे भरनी आरम्भ कर दी।

मधु के मन में भी उथल-पुथल मची हुई थी।···दाम्पत्य जीवन की यह कैसी शुरूआत है ?····क्या यही पुरुष-संसर्ग मिलता है नारी को ? क्या ऐसा ही चाहा-अनचाहा सब कुछ सहना पड़ता है···उसे····? कहाँ गईं मनीष की कोमल कल्पनाएँ····? कैसे रहेगी वह उसके साथ···लौट जाए···घर चली जाए। माँ कहेगी—"हमेशा से अकेले कमरे में पड़ी रहती थी, अब एक पुरुष का साया भी तुझे सहन न हुआ।" अम्मा कितना चाहती हैं मनीष को। काश ! मनीष कुछ समझ लेता।

पापा से क्या कहेगी वह····? मनीष पापा जैसा स्नेही क्यों न हुआ ? क्या कमी है उसको ? पापा माँ का कितना ख्याल रखते हैं। उसकी आँखों में आँसू भर आए। और···जब मनीष को देखती हूँ···विवाह को चार दिन भी नहीं हुए···वह मुझसे क्या ऊबा, जैसे अपने से भी ऊब गया है।

क्या यह समाज जीने देगा अलग रहकर ? मनीष का क्या बिगड़ा, उसके लिए एक से एक अच्छे रिश्ते अब भी आ सकते हैं। वह बाथरूम में नहा रही थी। एक छिपकली दीवार पर रेंगती हुई दिखाई दी। उसके पूरे शरीर पर सिहरन हो आई। उसे लगा कि वह भी अवाञ्छित जीवन की दीवार पर एक छिपकली जैसी ही घिनौनी होकर टुकुर-टुकुर ताक रही है। मनीष उसकी ओर दृष्टि उठाएगा भी तो पलभर बाद ही उगालदान में थूक देगा और अपने काम में व्यस्त हो जाएगा। क्या करे वह···? क्या करे वह ? क्या करे ?

और फिर संस्कारों के उबाल का एक बुलबुला उसके मस्तिष्क में जाकर चिपक गया। नारी शक्ति है। पुरुष के लिए आश्रय भी है। कितनी ही पुस्तकें उसने पढ़ी हैं, अनेक कहानियाँ सुनी हैं, बहुत से चलचित्र भी देख डाले हैं। जीवन से पलायन तो नारी के हिस्से में ही नहीं आया है। उसे स्थिति का सामना करना है। क्या मालूम, मनीष का मन परेशान हो···कॉलेज की किसी घटना का प्रभाव उसके मन पर हो या उसके जीवन में कोई और आ गई हो··· झन्न से हथौड़े जैसी चोट उसके दिमाग पर पड़ी। मन में कुछ चटक गया।

विगत दो वर्षों से मनीष का घर न आना···बार-बार खर्चे के लिए ज्यादा पैसों का अनुरोध···दद्दा जी (हरि काका) का नाराज हो जाना····। बीच में एक

मेडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल का तार आया था। दिनेश भैया और दद्दाजी दिल्ली गए थे। वहाँ से लौटकर काफी दिन तक मौन रहे और पापा से इतना ही कहा था—"कुछ फीस के एरियर वगैरह का चक्कर था, इसलिए परीक्षा में अड़ंगा लगा था। सब ठीक हो गया।...लड़के कुछ कहते-सुनते हैं नहीं, प्रिंसिपल को तार भेजना पड़ा" और बात आई-गई हो गई।

● ● ●

:१०:

मधु नहा-धोकर तैयार हो चुकी थी। चाय लेकर मनीष के सामने पहुँची। उसके मुख पर किसी दृढ़-निश्चय की गंभीरता झलक रही थी। मानो वह कृत-संकल्प थी कि उसे सब झेलना है, सब सहना है। पुलकित मुखमुद्रा और बड़ी मधुर वाणी में वह मनीष से कह रही थी, "उठिए, चाय पी लीजिए।' मनीष अपने पार्श्व में रखे तकिए से लिपटा सो रहा था। मधु की आवाज की खनक कान में पड़ते ही वह अँगड़ाई लेते हुए उठ गया। बगल में रखा तकिया उसने पीठ के पीछे टिका लिया और उसी के सहारे बैठकर चाय पीने लगा। उसकी दृष्टि नीचे झुकी थी और मधु उसकी ओर देख रही थी।

सद्यःस्नाता मधु कोटा-प्रिण्ट की शरबती रंग की साड़ी पहने थी। उसके लम्बे-लम्बे केशों से पानी की बूँदें यदा-कदा धरती पर टपक रही थीं। वह चौड़ी लाल बिन्दी माथे पर लगाए थी। आँखों की कोरों में काजल का स्पर्श था। उसके लावण्य और मुख का भोलापन देखकर उसके मन की उछल-पुथल

का आभास नहीं हो सकता था। शृंगार के अनेक प्रसाधन उसके पास थे, परन्तु उसकी रुचि की वस्तुओं में इत्र की शीशियाँ और सेंट-स्प्रे उसे सर्वाधिक प्रिय थी।

उसके पास खड़े रहने पर सुगन्ध का एक झोंका मनीष को मस्त कर गया। उसने मधु पर चुराती हुई-सी दृष्टि डाली। लेकिन, अन्दर कहीं उसका अहम् उसे कचोट रहा था। उसकी दुर्बलता उसके अपने सुखों के आड़े आ रही थी। वह सोच रहा था—इस निरीह, निष्पाप-सौन्दर्य को भोगने का क्या वह सच-मुच अधिकारी है? कितनी निश्छल हँसी है मधु की! कितनी भोली दृष्टि है मधु की!··· वह भाग्यवान् है कि मधु को उसने पाया।··· परन्तु··· परन्तु कभी इन आँखों में घृणा उभर आई तो वह सहन नहीं कर सकेगा। और वह निरन्तर असहनीयता की स्थिति उनके लिए मरण से भी ज्यादा घातक हो जाएगी। उसने मधु से विवाह करके उसके प्रति अन्याय किया है। उसे ऐसा नहीं करना चाहिए था···।

न जाने, कितने लोग प्रेम-सम्बन्धों में बँधते हैं। बिछुड़ जाते हैं। मन दुखी होता हैं; रोता है, फिर भी, समय के साथ सारे घाव भरते जाते हैं। धीरे-धीरे जिन्दगी सामान्य होती जाती है। वह भी सहज भाव से सब कुछ स्वीकार कर ले, तो भला है। परन्तु··· वह नहीं कर सकेगा। चाहते हुए भी नहीं कर पाएगा····और यह स्वीकार न कर पाने की स्थिति उसे अपने अपराध के लिए मधु को दोषी मानने को बाध्य करती है। वह कठिनाई से मन को रोक पाता है। जितना ही वह मन पर नियन्त्रण करता है, मन को रोकता है, उतनी ही तीव्र पीड़ा उसे सालने लगती है। मन कसकने लतगा है और यह दुख क्रोध में बदल जाता है। उसे क्रोध आने लगता है···तभी अपने क्रोध का उबाल शान्त करने के लिए वह अपनी ओर से आँखें मूँदता है और उसे सारा दोष मधु में ही दिखाई देने लगता है। माना कि इस सबसे वह अनभिज्ञ है, उसी के कारण तो वह सब हुआ····वह स्वयं त्रस्त है, समझ नहीं पाता किस प्रकार मन को शान्त करे····। कैसे ····?"

वातावरण में बिखरती मधु के अंगरोगों की सुगन्ध और मस्तिष्क में बस गई उसके शरीर की गन्ध उसे प्रेम-विभोर किए दे रही थी। लेकिन उसके आने के साथ ही, मृणाल की छाया सी उसके मन, उसके मस्तिष्क पर छाने लगी। मन के त्रास और तिक्तता को घूँटता हुआ जैसे वह अवश होने लगा। माथे पर कुछ रेखाएँ उभर आईं। बाँहों की नसों में तनाव स्पष्ट दिखाई देने लगा और उसके हाथ काँपने लगे। मधु उसके पास ही बिस्तर पर बैठ गई। वह उसके अन्तर्द्वन्द्व की पढ़ को लेने की चेष्टा सी कर रही थी। आगे बढ़कर उसने उसके हाथ से चाय का प्याला थाम लिया।

मधु की स्निग्ध दृष्टि और हाथ के कोमल स्पर्श से, उसकी कुछ समझ लेने की गहरी मुद्रा से, मनीष कहीं अन्दर तक हिल उठा। उसकी आँखें डबडबा आईं। बिस्तर पर अधलेटे मनीष ने तकिए में मुँह छिपा लिया और सिसक-सिसककर रोने लगा।

मनीष के कन्धे को सहलाती हुई मधु बोली, "मुझे कुछ तो बतलाइए, क्या हो गया है आपको ? क्या बात है, क्यों इतने परेशान हैं आप ?

"……।"

"देखिए अब तो मैं आपकी जीवनसंगिनी हूँ…और मुझसे अकारण निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है….कुछ कहिए तो सही। शायद मैं आपकी सहायता कर सकूँ। उठिए, आँखें पोंछिए। डाक्टर होकर विकलता से ऐसे रोना आपको शोभा नहीं देता। उठिए…"

और उसने मनीष को उठाकर बैठा दिया। गरम-गरम चाय का प्याला लाकर उसे दिया। मनीष ने प्याला थाम लिया। उसने चुपचाप प्याले को मुँह से लगाया और जमीन की ओर देखते हुए चाय सिप करने लगा। तत्पश्चात् कुछ आश्वस्त होकर उसने कहा, 'मधु, मैं तुम्हें बहुत चाहता हूँ।"

"जानती हूँ।"

"लेकिन….मधु अब, मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकता।"

"क्यों, क्या बात है,…कुछ कहो भी तो ?—विस्फारित नेत्रों से मधु मनीष को देखती रह गई।

"नहीं मधु, बात कुछ नहीं। परन्तु मैं अब तुम्हारे साथ····नहीं रह पाऊँगा। ····मैंने दद्दा जी से बहुत मना किया था कि यह विवाह मत कीजिए। लेकिन उन्होंने नहीं माना। तुम्हारे पापा और माँ से कहकर यह सम्बन्ध तय कर लिया था। यह खानदान की प्रतिष्ठा का प्रश्न था····।"

"तो आपने मुझे ही संकेत कर दिया होता····या सरिता भाभी से कहलवा देते····या एक-दो पंक्तियाँ पत्र ही लिख देते····।"

"सरिता भाभी को कुछ भी नहीं मालूम, मधु! पत्र लिखने का तुम न जाने क्या अर्थ लेतीं। परन्तु····अब मैं विवश सा बाँध दिया गया हूँ।"

मधु के मन में आवेग और आक्रोश उभरने लगा। फिर भी, अपने को संयत करती हुई वह बोली, "आपको विवश होकर बँधने की जरूरत नहीं है। आप स्वतन्त्र हैं। मेरी जिन्दगी में जो मोड़ आना था, आ चुका। आगे ईश्वर को जो मंजूर हो····।"

"मुझे माफ कर दो···मधु,····मुझे माफ कर दो। मैं सचमुच ही तुम्हें, कोई सुख न दे सकूँगा। लेकिन यह भी जानता हूँ, तुम जैसी सहचरी मुझे नहीं मिलेगी।"

'आप तो मुक्त रहना चाहते हैं। आपको सहचरी की आवश्यकता ही क्या है? अच्छा होता, एक सप्ताह पहले हम लोग यह तय कर लेते। स्त्री के जीवन में पुरुष एक बार ही आता है····मैं आपकी विवाहिता हूँ। अब तो अलग रहकर भी मुझे आपके नाम के साथ ही जुड़ना है। माँ-पापा को दुःख होगा। उन्होंने जीवन में इतना कुछ सहा है। यह भी सही···।"

मधु की आँखों में आँसू भर आए। फिर भी, वह अपने को संयत बनाए रखने का भरसक प्रयत्न कर रही थी।

"मधु, मैं भी जानता हूँ; चाचा जी की दुनियाँ तुम्हीं तक केन्द्रित है। तुम्हें दुखी देखकर तो वह कभी सुखी नहीं रह सकेंगे। मैं भी विवश हूँ····मैं निरन्तर तुम्हारा सामना नहीं कर सकूँगा। मधु, मैं पागल हो जाऊँगा या आत्मघात कर लूँगा।"

मनीष के मुख पर हाथ रखती हुई मधु बोली, "बस-बस, बन्द कीजिए। आपकी सचमुच कोई विवशता है तो मैं आपके जीवन से निकल जाऊँगी....। मेरे हट जाने से ही आप जी सकते हैं तो मैं आपकी आँखों से कहीं दूर चली जाऊँगी। भगवान् के लिए आत्मघात की बात न सोचिए। आज ही घर चलिए। जैसा आप चाहेंगे...।"

"ऐसा ही है तो दो-चार दिन और यहाँ रह लें। मैं जानता हूँ, यह आघात तुम्हें महँगा पड़ेगा। तुम इतनी जल्दी मान जाओगी, इसकी मुझे आशा नहीं थी....तुम चाहो तो दूसरा विवाह करने को स्वतन्त्र हो...।"

"बस, बस कीजिए। बहुत हो चुका। मेरी ओर से आप स्वतन्त्र हैं। अब मेरे सम्बन्ध में आपको कुछ सोचने-विचारने की आवश्यकता नहीं है। अपना भला-बुरा मैं सब देख लूँगी और अभी तो माँ-बाप का साया सिर पर है...। हाँ, जिन्दगी में कभी आपके काम आ सकी, तो मुझे खुशी होगी।"

कभी-कभी कितनी असहज बातें स्वीकार कर लेने पर सहज हो जाती हैं। मधु स्वयं भी हैरान थी कि किस प्रकार उसने इतना बड़ा निर्णय इतनी जल्दी ले लिया। सामान्यतः जैसा होता आया है, न तो वह मनीष के चरणों में गिरी, न ही रोई-गिड़गिड़ाई। विवाह-विच्छेद भी उसने ऐसे ही स्वीकार कर लिया, जैसे मनीष द्वारा प्रस्तुत विवाह प्रस्ताव। ठीक भी है। यदि मनीष के मन में घृणा भर गई है, तो सारी जिंदगी विवश सी घिसटती रहने में ही कौन बड़ा सुख मिल जाता। काश, मनीष ने पहले ही सब कुछ कह दिया होता...। सरिता भाभी ने ही...कितना विश्वास किया था उसने सरिता भाभी पर। मन को बहुत समझा रही थी कि मेरा बिगड़ा ही क्या है? संयत होकर घर पहुँचे तो अच्छा है। जाते ही रोना-धोना, लड़ाई-झगड़ा कुछ नहीं होना चाहिए।

सोचते-सोचते अकस्मात् उसकी मुट्ठियाँ बँध ही जाती थीं। कई दिन से तनावपूर्ण स्थिति में जीते हुए और निरन्तर मौन रहते हुए उसे लगता, कहीं उसके जबड़े जकड़ न जायँ...घर पहुँचने तक वह बोलना ही न भूल जाय।

त्याग में बड़ी शक्ति होती है। मनीष की याचना पर उसने सम्बन्धों के विच्छेद का दान दे दिया था। ऐसा क्यों? केवल मनीष के सुख के लिए ही तो, ठीक भी है, साथ रहकर जीवन से ऊब का एहसास होता रहे; इससे अच्छा है अलगाव की स्थिति में शांतिपूर्वक जीवित रह लेना। यह कठोर सत्य है कि जीवन की नई धारा के प्रवाह में, मनीष ने उसे बहुत बड़ी सजा दे डाली है। इतने पर उसे विश्वास था कि वह उसकी बात मान जाएगी।···ठीक है, एक का विश्वास पूर्ण हो जाए। मनीष जहाँ भी रहे, सुखी रहे, खुश रहे···यही कामना करती हुई वह अपने मन में कुछ ऊँची उठ गई सी प्रतीत हुई।

मधु के आश्वासन से मनीष के हृदय का तूफान शान्त हो गया-सा लगा। अब उसके चेहरे पर न तनाव था, न भावों का उतार-चढ़ाव और न ही क्रिया-कलाप में आतुरता थी। ऐसा लग रहा था कि वह सदैव से ही सहज, शान्त और निर्लिप्त है।

● ● ●

: ११ :

मधु पहले भी तो नौकरी करते हुए माता-पिता की सेवा करने की बात सोचा करती थी। उसकी इस बात पर सरिता उसका सदा ही उपहास करती थी। और···मन समझाने को इतना ही काफी है कि बिगड़ ही क्या गया···कुछ दिनों का ही तो व्यवधान रहा। परन्तु···इन दो वर्षों के अन्तराल में उसने सपनों के जो महल सजाए थे वे भूचाल की चपेट में आ गए। किसी

महानगर की भाँति ध्वस्त हो गए, चूर-चूर हो गए। यह वही मधु थी। वही उसका मन था। लेकिन सम्बन्धों के ध्वंस की नाटकीयता रह-रहकर मन में डोल जाती थी। मन को कम्पित कर देती थी। माँ और पापा के सामने उसे अभिनय करना पड़ता था, मानो वह इस नई स्थिति में भी निर्विकार भाव से पहले की तरह ही जीवन जी रही है।

क्या-क्या सोच लिया था उसने? डाक्टरी पास करके मनीष को भी सहयोग देगी। दोनों मिलकर एक अच्छा-सा अस्पताल खोल लेंगे। उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उनका अस्पताल विशाल होता जाएगा। काम बढ़ने पर और डाक्टर भी अपने यहाँ रख लेंगे। पृथक्-पृथक् चिकित्साओं और विभागों का विस्तार करते हुए किसी अनुसन्धान-केन्द्र के रूप में उनका अस्पताल विकसित होता जाएगा···और एक दिन वह संस्था संसार की बड़ी मेडिकल-यूनिट बन जाएगी। मानवता की सेवा में यह एक बड़ा प्रयास होगा। अमीर लोग तो पैसे के बल पर कहीं भी उपचार करा सकते हैं, मगर उनकी संस्था असहायों-निर्धनों का उपचार करेगी। कितने ही व्यक्ति पैसे के अभाव में कष्ट पाते हैं। संक्रामक रोग और अनेक दुस्साध्य बीमारियाँ उनका जीवन दूभर कर देती हैं।

अपनी ही गली में देखा था उसने, किस प्रकार कल्लू माली की पत्नी ने खाँसते-खाँसते दम तोड़ दिया।···विवश असहाय से बच्चे, जिनके शैशव में ही मातृ-सुख की छाया सिर से उठ गई···रोते-बिलखते रह गए। अनेक बार तो माँ-पापा ने ही कल्लू माली को उपचार के लिए रुपए दिए थे। लेकिन, सौ-दो सौ रुपए में कितने दिन का खर्च चल सकता है····?

एक बार पापा ने अपने एक डाक्टर मित्र के नाम पत्र लिखकर कल्लू को लखनऊ भेज दिया था। मेडिकल कॉलेज के टी० बी० वार्ड में कल्लू अपनी पत्नी झुनियाँ को दाखिल करा आया था।

बड़ी मस्त थी झुनियाँ मालिन। जब भी अम्मा बुलातीं वह काम करने आ जाती थी। घर-गृहस्थी का कोई भी काम हो···झुनियाँ तैयार। बढ़ती गृहस्थी का खर्च कल्लू की आमदनी से नहीं चल पाता था। अतः झुनियाँ ने चार-पाँच

घरों में चौका-बरतन करना शुरू कर दिया था। सावन में झूले पड़ते और झुनियाँ बर्तन माँजते-माँजते गा उठती थी—"चूड़ा तो मेरी जान···चूड़ा तो हाथी दाँत का जी?"

पास-पड़ोस के घरों में कहीं भी कोई मंगल-कार्य होता, बन्ने गाये जाते या सोहर, पान से रचे लाल तूल, जैसे झुनियाँ के होंठ फकड़ने लगते थे। दिनेश भैया के विवाह में भी कमर को बल दे-देकर उसने जब फिल्मी गानों की तरंग उठाई, तो नाउन जोर-जोर से ढोलक पर थाप देने लगी थी। महावर रचे काले पैरों में चाँदी की पायल और मोटे-मोटे घुंघरू खनकाती वह घंटों मस्त होकर थिरकती रही थी।

विचारों का प्रवाह कहाँ से कहाँ जा टकराया। हँसती-गाती झुनियाँ की गृहस्थी उसके पाँचवें बच्चे के जन्म के बाद एकाएक ही डगमगाने लगी। झुनियाँ को प्रसूती-ज्वर ने धर दबाया। कितना उपचार कराया कल्लू ने। उस बार तो झुनियाँ मेडिकल कालेज से अच्छी होकर आ गई थी। घर आकर न तो पौष्टिक भोजन ही जुटा सकी और न ही आराम पा सकी। बार-बार माँ से कहा करती थी—"बहू जी, बड़ी तमन्ना थी मधु बिटिया की डोली अपने ही हाथों से, गुलाब और मोगरे के फूलों से सजाऊँगी। इस दरवाजे से उस दरवाजे तक ही तो जाएगी बिटिया। मैं गली में फूलों की गलीचा बिछा दूँगी।···पर··· बहू जी हमारे तन को भगवान् ने घुन लगा दिया···सब अरमान मन के मन ही में रह गए।"

और, सचमुच ही झुनियाँ के अरमान उसके साथ ही चले गए। उसे तो मनीष ने भी कितने ही टॉनिक लाकर दिए थे। उसके घुन लगे तन और दुख में डूबे मन को, कोई दवा उबार न सकी।

× × ×

रामगंगा का मेला लगता है। भिखारियों की भीड़ लग जाती है। केवल भूखों की नहीं—पीड़ितों की, लुंज-पुंज हाथ-पैर वालों की, दूसरों की दया-ममता के आसरे जीवन घसीटने वालों की। क्या कभी वह उन अभागों की सहायता कर सकेगी?

गढ़मुक्तेश्वर के मेले पर कार्तिक-पूर्णिमा के दिन बड़े-बड़े सेठों की ओर से भंडारे खुले रहते हैं। हजारों साधु-सन्त भंडारों में भोजन करते हैं। उन साधुओं के प्रति उसे कभी तनिक भी श्रद्धा न हुई। दूसरों के खून-पसीने की कमाई पर गुलछर्रे उड़ानेवाले व्यक्ति मात्र गेरुआ रंग के वस्त्र पहन लेने से क्या सन्त हो जाते हैं? ईश्वर ने जीवन दिया है तो उसके वहन करने का धर्म मनुष्य का स्वयं का है। दूसरों के श्रम पर परजीवी (पैरासाइट) बनकर जीने-वालों को कैसे वह त्यागी-तपस्वी माने। लेकिन बार-बार उसे लगता है कि उन अपंगों और अपाहिजों का क्रन्दन उसके कानों में गूँज रहा है। अगणित ध्वनियाँ एक साथ मानो उसका आह्वान कर रही हों। अभी तक वह समझती थी कि यह उसके मन का भ्रम है। शायद उसे बहुत कुछ निरर्थक सोचने की आदत पड़ गई है। या, शायद वह अपनी सीमाओं में इतनी जकड़ गई है, इतनी संकुचित हो गई है कि अपनी दुनियाँ के बाहर वह कुछ सुन ही नहीं सकती, देख ही नहीं पाती।

अब ऐसा प्रतीत होता है कि एक झटके से मनीष ने उसके हृदय के कपाट खोल दिए हैं। स्पष्ट दिखाई देने लगा है कि अब उसे क्या करना है। जिन ध्वनियों की आहट और टकराहट को वह मन का भ्रम समझती थी···वह उसे स्पष्ट सुनाई देने लगी है। यही निश्चय की बेला है।···भीरु-सा, कायर-सा··· अपने ही दुःख से बोझिल-सा मनीष स्वयं ही उसके स्वप्न-संसार से निकल गया। इसकी तो चेष्टा या चिन्ता भी उसे नहीं करनी होगी।···स्वयं को आश्रित बनाकर जीने के लिए आश्रय की आवश्यकता होती है और स्वयं दूसरों का आधार बनकर जीने की कामना में तो व्यक्ति को सहना ही है···करना ही है···चलना ही है···चरैवेति···चरैवेति···।

उसे कुछ विश्वास हो चला कि उसके स्वप्न साकार होंगे। पापा का उसे पूरा सहारा है। उनके मन में भी तो समाज-सेवा की भावना कूट-कूट कर भरी है। वह जानती है, माँ अवश्य ही विरोध करेंगी। जिस बात को वह एक साधारण घटना मानकर जीवन-शक्ति का प्रवाह ही मोड़ देने की सोच रही है,

वही बात माँ के जीवन की बहुत बड़ी घटना है। माँ के समाज में, स्त्री-समाज में उसे इतना तूल दिया जाता है कि जीना दूभर हो जाए।

आज तो उसे ऐसा आभास हो रहा है, मानो साक्षात् माँ दुर्गा ही उसकी नसों में शक्ति का संचार कर रही हैं। ईश्वर ने सद्बुद्धि दी थी कि वह पी० एम० टी० में बैठ गई थी। माँ ने बार-बार प्रतिवाद किया था, "क्या होगा डाक्टरी के इम्तहान में बैठकर···मधु, तुझे घर-गृहस्थी सँभालनी है, क्यों फालतू पैसा और वखत बर्बाद कर रही है।"

पापा ने शान्त मन से माँ को समझाया, "सोमा, मधु को परीक्षा में बैठ जाने दो। कुछ ही दिन की तो बात है। मधु डाक्टर बनकर भी मनीष का हाथ बँटाएगी। मनीष एम० एस० करना चाहेगा तो उसकी पढ़ाई में भी अभी कई वर्ष और लगेंगे।"

मधु इंटर प्रथम श्रेणी में पास हुई और पी. एम. टी. में भी उसे सफलता मिली। लखनऊ मेडिकल कालेज में उसका दाखिला हो गया। वह नई स्फूर्ति से अध्ययन में लग गई और विवाह की घटना एक दुःस्वप्न की भाँति उसने अपने अचेतन में धकेल देनी चाही। इसी का परिणाम था कि दिन-प्रतिदिन उसका व्यक्तित्व निखरने लगा। उसकी गणना प्रखर बुद्धि छात्र-छात्राओं में होने लगी। मेडिकल कॉलेज में पहुँचकर अपने परिश्रम से उसने वहाँ जो स्थान बना लिया था, उससे उसकी माँ और पापा दोनों ही उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त होने लगे। फिर भी, कभी-कभी सोमा का कोमल और भावुक मन दुखी हो उठता और भीतर-ही-भीतर उन्हें वह दुंख पीना पड़ता था।

● ● ●

:१२:

मधु के अध्ययन काल के प्रथम दो वर्षों तक सोमा को बहुत कष्ट का अनुभव होता रहा। वह सोचती थी, क्यों ईश्वर मुझसे इतना विमुख हैं। पति मिला तपस्वी सा, जिसने जमीन-जायदाद की भी चिन्ता न की। पुत्र जन्म के पूर्व ही भगवान् का हो चुका था। एकमात्र बेटी का सुख भी ईश्वर ने न चाहा। क्यों··· आखिर··· ईश्वर ने उसके साथ यह अन्याय किया है। जो सुख वह औरों को देता है, उसे ही क्यों उन सुखों से वंचित रखा। क्यों उसकी जिन्दगी सबसे अलग, कटी-कंटी सी होती जा रही है ? क्या बिगाड़ा था उसने किसी का ? अपने प्रति किए गए [illegible] का प्रतिदान तो वह पार्वती को देती रही है। अब तक सब कुछ सहा ही है। पार्वती समझाती, तो क्या मनीष मान न जाता ? अब इस नन्हीं सी जान को पहाड़ सी जिन्दगी भर तो माँ-बाप साथ नहीं दे सकते। समाज में कितने ही पिपासु युवा नारी-शरीर को सह नहीं पाते। भेड़िए की तरह पड़नेवाली दृष्टि की चिनगारी मेरी फूल-सी कोमल बच्ची कैसे सह पाएगी ? अनेक व्रत-उपवास किए थे मधु की मंगलकामना के लिए। मधु के पापा उपहास भी करते थे, रुष्ट भी हो जाते थे कि क्यों अपना शरीर सुखाए डाल रही हो। और, समझाते भी थे कि तुम अच्छी रहोगी तो ढंग से बेटी का पालन-पोषण कर सकोगी।

परन्तु, अपने मन को वह क्या करे, कैसे समझाए ? मधु के सिर में दर्द भी हो जाता, तो उसके गले से कौर नहीं उतरता था। उसकी तनिक-सी पीड़ा उसका दिल दहला देती थी। उसे थोड़ा सर्दी, जुकाम भी हो जाता, तो वह चिन्ता के कारण सो नहीं पाती थी।

उस समय तो वह यही सोचती "मधु आँखों के सामने है तो यह हाल है। मधु के कहीं बाहर रहने पर उसकी अस्वस्थता का समाचार सुना तो शायद वह जीवित भी न रह सकेगी।"

मधु जब खाना खाने बैठती, सोमा समीप बैठी उसे निहारा करती। अनेक बार जिद करके मधु ने माँ को अपने साथ बैठाकर खाने की आदत डाली। माँ को ख्याल आता रहता कि मधु चली जाएगी तो कैसे वह इस घर की दीवारों में घिरी अपना समय काटेगी। जितना ही वह उसकी देखभाल करती, वह उसे दुर्बलतर दिखाई देती और उसे कमजोर देखकर वह खीझ उठती। वह सोचती, मधु के पापा ने पढ़ाई की धुन न लगा दी होती, तो उसका स्वास्थ्य अच्छा रहता। अब कितनी भी सेवा कर लो, उसके शरीर पर मांस नहीं चढ़ता।

मनीष के साथ मधु के विवाह की बात पर वह इसीलिए प्रसन्न थी कि बिटिया उसकी आँखों के सामने रहेगी। जाना-पहचाना घर। अपने ही सब लोग। सरिता और मनीष का मधु के प्रति विशेष झुकाव देखकर उसे सुख अनुभव होता था।

नैनीताल से लौटकर शाम को ही मनीष मधु को उसके वस्त्रालंकारों सहित घर पहुँचा गया। निर्लिप्त-सा मधु का चेहरा और बुझे-बुझे-से मनीष को देखकर उसे तभी सन्देह हुआ था कि कुछ गड़बड़ है। ससुराल से अनेक सुखद स्मृतियों को सँजोए हुए लड़कियाँ जब पहली बार मायके लौटकर आतीं तो सुख से आह्लादित और पुलकित मुख देखना उसे बहुत ही अच्छा लगता था··और मधु तो सब परिचितों के बीच ही गई थी। जब से उसका विवाह तय हुआ था, सोमा ने उसकी गम्भीरता देखी थी और उसकी घुटन भी वह समझ रही थी। उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करती थी। लेकिन, मधु ने माँ के प्रति उदासीन-सा भाव बनाए रखा और स्वयं को पुस्तकों में डुबो दिया। माँ की अत्यधिक ममता और वत्सलता से वह दूर भागती। हाँ, पापा के सम्मुख अपने सहज रूप में ही आती थी।

और उस रात खाने के समय मधु ने कह दिया था कि वह और मनीष अलग-अलग रहेंगे। माँ की ओर उन्मुख होकर दृढ़ता से उसने कहा था कि जो कुछ मुझे निश्चय करना था, वह हो गया। पार्वती मौसी के पास जाकर अब समझौते की कोई बात करने को चेष्टा न करना।

सोमा हतप्रभ-सी उसे देखती रह गई थी। बेटी की दृढ़ता के आगे माँ को झुकना पड़ा। पापा ने भी माँ से कह दिया था कि किसी तरह की मान-मनौवल

का जोर मधु पर न डाला जाय। सोमा दोनों ओर से विवश-सी भाग्य को स्वीकारने के अतिरिक्त कर भी क्या सकती थी ?

× × × ×

समय भागता रहा और अब एक ठहराव का सा सुखद अनुभव कर माँ सोचने लगती थी कि भगवान् के घर देर है, अन्धेर नहीं। सुशील ने एक बार कहा था, "सोमा, यदि तुम पूजा-पाठ और भगवान् में विश्वास रखती हो, तो अब कभी तुम भगवान् को दोषी न ठहराना। वरन् मधु जो स्पप्न देख रही है उसे साकार करने के लिए तुम्हें भगवान् से मंगलकामना करनी है और तुम्हारी प्रार्थना भगवान् अवश्य सुनेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।"

अश्रुपूरित नेत्रों से सोमा ने पति की ओर देखा और अब उसकी समझ में आया कि उसके पति ने क्या कुछ देख-समझकर बेटी को स्वच्छन्दता से बढ़ने दिया और क्यों मधु अपने पापा के इर्द-गिर्द घूमती थी। माँ की तनिक सी बात पर रूठ जानेवाली मधु पापा के संकेत मात्र से भी बँधी रह जाती थी।

सुशीलचन्द्र का जीवन भी कैसा था ? बचपन में ही माँ-बाप का साया सिर से उठ गया। साहू साहब के यहाँ पले-बढ़े, उच्च शिक्षा प्राप्त की। और आज अपने कालेज के अध्यापन में केवल रोजी-रोटी के लक्ष्य से ही नहीं बँधे हैं, अपने विद्यार्थियों के लिए एक आदर्श भी हैं। उनकी बैठक में सुबह-शाम लोगों की भीड़ लगी रहती है। उनकी लोकप्रियता को देखकर कभी-कभी किसी राजनीतिक दलविशेष के व्यक्ति भी उनसे चुनाव में खड़े होने का अनुरोध करते हैं। परन्तु, राजनीति के दाँव-पेच उनके स्वभाव से मेल नहीं खाते।

सुशीलचन्द्र ने अवकाश के समय होम्योपैथी की पुस्तकें पढ़-पढ़कर एक छोटा सा औषधालय भी खोल लिया है। तनिक सी तकलीफ होने पर आस-पास के लोग उनके पास सहायता के लिए दौड़े आते हैं। लेकिन छिट-फुट तकलीफों में ही वह अपनी ओषधियों का प्रयोग करते हैं, किसी की विशेष चिन्ताजनक हालत देखकर वह अपनी दवाओं का प्रयोग न कर तुरन्त ही रोगी को अस्पताल पहुँचाने में सहायता भी देते हैं।

पति की इस सेवा-भावना से सोमा आरम्भ में त्रस्त हो जाया करती थी। धीरे-धीरे उनके इस स्वभाव को भी उसने नियति का चक्र मान लिया। उसके मन में कुछ अहकता था, दिमाग में कुछ टकराता था, तो यही कि इतना सब कुछ करने पर भी उन्हें क्यों कष्ट मिलता है ?

× × ×

:१३:

आज डाक्टर मधुरिमा केवल सोमा देवी की लाड़ली बेटी ही नहीं है, वरन् उसका इतना बड़ा परिवार बन गया है, जो सोमा देवी की कल्पना से परे था।

दिन भर फोन की घंटी घनघनाती रहती है। एक व्यक्ति इसी में व्यस्त रहता है कि डाक्टर एक दिन में कितने रोगियों को समय दे सकेंगी, इसका लेखा-जोखा रखे।

मोहन माली बँगले की फुलवारी के रखरखाव में व्यस्त रहता है। वह राजकीय वनस्पति-उद्यान से नए-नए फूलों की पौध लाकर लगाता; पौधों की कटिंग करके उन्हें भाँति-भाँति के आकारों में तराशता, खाद और पानी की समुचित व्यवस्था करता है। उसका एक और मुख्य काम है, रोज सबेरे सभी कमरों के गुलदस्तों को नये ढंग से अलंकृत और प्रस्तुत कर देना।

× × × ×

मुरादाबाद में साहू साहब का रघुनाथ जी का मन्दिर है। मन्दिर में पण्डित रामदत्त पुजारी थे। ढूंढ-ढूढकर सिद्ध पुरुषों के दर्शन करना उनके जीवन का

परम लक्ष्य वन गया था। अनेक बार वह काशी जाते और हर वार वह किसी-न-किसी साधु सन्त की संगति करके अपना जीवन धन्य मानते थे।

सुना था, काशी में एक सिद्ध योगी आया हुआ है। उस बार पुजारी जी ने देखा, बाबा विश्वनाथ के मन्दिर में एक ब्रह्मचारी भगवान् का स्तुति-गान कर रहा है। योगी की आँखों से प्रेम और भक्ति की गंगा-यमुना वह रही थीं। उसकी घनी केश-राशि किसी सुन्दरी युवती की भाँति कमर पर बिखरी हुई थी। वह घुटनों के बल हाथ जोड़े बैठा था और झूम-झूमकर आरती-गान कर रहा था। आरती वन्दना समाप्त हो जाने के एक घंटे बाद तक वह योगी भाव-विभोर, भगवान् के प्रेम में अश्रु बहाता रहा था। ब्रह्मचारी का नाम सुधाकर शास्त्री था और आयु पच्चीस वर्ष।

सुधाकर शास्त्री की भक्ति ने पुजारी जी को इतना प्रभावित किया कि वह वार-वार अनुरोध कर उन्हें अपने साथ मुरादाबाद ले आए। नित्यप्रति संध्या को रघुनाथ जी के मन्दिर में, 'रामचरित मानस' के किसी-न-किसी प्रसंग को लेकर उनके प्रवचन होने लगे। उनको सभी 'ब्रह्मचारी जी' कहकर सम्बोधित करने लगे। कचहरी, रोड गंज, बुध का बाजार, अमरोहा गेट, चौमुखा पुल से भक्तों की अपार भीड़ मन्दिर में आने लगी। उनके प्रवचन की ख्याति इतनी फैली कि रात के ग्यारह-बारह वजे भी भक्त कटघर जैसे दूरस्थ स्थानों को लौटने में घबराते नहीं थे।

ब्रह्मचारी जी मन्दिर में ही रहते थे। साहू साहब के बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने उनकी कोठी पर भोजन-व्यवस्था स्वीकार नहीं की। अपितु वह पुजारी जी के साथ भोजन करने लगे। पुजारी जी की पत्नी पण्डितानी को भी ब्रह्मचारी पर अपार श्रद्धा थी। फिर भी, खाना खिलाते समय पण्डितानी पास बैठी हुई पंखा झलती थी, ऐसा लगता जैसे बेटे को परदेस से लौटा हुआ देखकर माँ की ममता उमड़ी पड़ रही है।

पुजारी जी के तीन संतानें थीं। एक बेटी और दो बेटे। बेटी रमा पर पुजारी जी का अत्यधिक स्नेह था। इसी कारण पण्डितानी व्यंग्य से उसे लड़ैतिया कहती थी। रमा अति सुन्दर और मेधावी कन्या थी। ब्रह्मचारी के प्रव-

चन की बैठक तो मन्दिर में रात को जमती थी। पण्डितानी ने आग्रह किया कि वह दिन में रमा को संस्कृत पढ़ा दिया करें और ब्रह्मचारी ने यह अनुरोध प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार भी कर लिया। धीरे-धीरे इस संस्कृत पाठशाला में ब्रह्मचारी रमा को प्रेम का पाठ भी पढ़ाने लगे। चौदह वर्ष की अल्हड़ किशोरी रमा बड़े सहज ढंग से सब कुछ आत्मसात् करने लगी। और छह माह के अन्दर ही पुजारी को कन्यादान करना पड़ गया।

साहू कृष्णा जी ने पुजारी जी को सहारा दिया और कहा, "बिना माँ-बाप का लड़का है तो क्या ? ब्राह्मण है, विद्वान् है, सुन्दर है और तुम्हारे दोनों बेटे हरिया (बड़ा हरिदत्त) और शिब्बू (शिवदत्त) को सारे धार्मिक कृत्य एवं संस्कार भली-भाँति सिखा देगा। चारों वेदों का गुनी ब्राह्मण है। रुपए-पैसों की जरूरत हो, तो कहो। बेटी का कन्यादान तो हम भी लेंगे।" और साहू साहब ने बड़ी धूम-धाम से रमा का विवाह सम्पन्न करा दिया।

ब्रह्मचारी का विवाह हो जाने पर भक्तों की सारी श्रद्धा विपरीत बहाव में पड़ गई। अब लोग इसे व्यंग्य और घृणा से 'भरमचारी' कहने लगे। पण्डित-पण्डितानी को भी अनेक लाञ्छन सहने पड़े। रमा का रमा नाम तो लोग भूल गए और उसके माँ-बाप के स्नेह पर व्यंग्य करते हुए सब उसको लड़ैतिया ही कहने लगे।

हरिया और शिब्बू ने पूजा-पाठ करना भली-भाँति सीख लिया था। पुजारी के जीवन काल में ही उन्होंने मन्दिर का समस्त कार्य सँभाल लिया। कभी-कभी पण्डितजी भाव-विभोर होकर कह उठते थे, "रघुनाथ जी कृपा से मुझे राम-लक्ष्मण की जोड़ी मिली है। मेरे हरिया और शिब्बू में राम-लछमन जैसा ही अनुराग है..." कहते-कहते उनका गला भर आता और वह आँसू पोंछते हुए कहते, "चाँद में भी कलंक लगा है। मेरा ही भाग्य कौन बख्श देता। शास्त्री जी जैसा देवता जमाई बनकर आया...लड़ैतिया के भाग ही फूटे थे, नहीं तो राज करती...।"

सत्य ही लड़ैतिया के भाग फूटे थे, जो आसपास के लोगों को भभूत की चुटकी से रोग-शोक मुक्त कर देनेवाले शास्त्रीजी का अपना ही दिल दगा दे

गया। शास्त्री जी के 'दिल फेल' हो जाने की बात सुनकर सारी बस्ती में कितना हाहाकार मचा था। परिचितों के मन में एक बार फिर पुजारी जी के प्रति मोह उमड़ने लगा। श्रद्धा जागृत होने लगी। लड़ैतिया के विवाह के पश्चात् जो लोग पुजारीजी के आलोचक बन गए थे, वे सभी अपनी श्रद्धा, भक्ति से पुजारी जी के दुर्भाग्य के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए फिर से मन्दिर के द्वार पर मस्तक नवाने लगे।

शास्त्रीजी की मौत से पुजारी जी को ऐसा सदमा लगा कि वह हर समय दुखी और चिन्तामग्न रहने लगे। उन्होंने एक समय का खाना छोड़ दिया और अधिकांश समय भगवद्-भजन में बिताने लगे। लड़ैतिया बड़ी लगन से माँ-बाप की सेवा में तत्पर रहती। उसी में अपने वैधव्य का दुःख भुलाए रहती। माँ-बाप के सन्तोष के लिए सदैव प्रसन्न रहने को चेष्टा करती।

पुजारीजी का घर मन्दिर के पास ही था। लड़ैतिया का कहीं आना-जाना न था। हाँ, जब से सुशीलचन्द्र अलग घर में चले गए थे, वह प्रायः ही सोमा के पास जाया करती। सोमा को वह भी छोटी भाभी के नाम से संबोधित करती थी। सोमा के मन में भी लड़ैतिया के प्रति स्नेह और सहानुभूति थी। सोमा ही लड़ैतिया के सुख-दुख में समरसता की अनुभूति करती थी। उनकी अस्वस्थता और व्यस्तता की दशा में प्रायः लड़ैतिया ही उनके यहाँ खाना बना दिया करती।

मधु के डाक्टरी पास कर लेने तक पुजारी जी के परिवार में बहुत सारे परिवर्तन हो गए। पुजारी जी के आँख मूँदते ही उनके राम-लक्ष्मण में मन-मुटाव हो गया। आँगन में दीवार खिचने तक की नौबत आ गई। दोनों भाइयों में झगड़ा होने से लड़ैतिया का जीवन कठिन हो गया। माँ-बाप का साया सिर से उठते ही वह अनाथ-सी हो गई। दोनों भाई अपने-अपने स्वार्थों की बात ही सोचते थे। जब वह किसी का पक्ष लेती, दूसरा उसका शत्रु हो जाता। अतः सोमा ने आग्रह-पूर्वक बुलाकर उसे अपने यहाँ रख लिया। लखनऊ में व्यवस्थित होने पर मधु उसे अपने साथ लखनऊ ले आई। वह लड़ैतिया ब्राह्मणी को सदा बुआ कहकर ही पुकारती है।

आज भी वह डाक्टर मधुरिमा की बुआ है। लड़ैतिया बुआ ने उसकी कोठी पर भोजन इत्यादि की व्यवस्था बहुत कुशलता से सँभाल रखी है। सोमा और सुशीलचन्द्र दोनों ही लड़ैतिया बुआ का सम्मान करते हैं। अतः कोठी पर काम करने वाले अन्य सेवक भी उन्हें 'बुआ जी' कहकर पुकारते हैं, उनका आदर करते हैं। बुआजी की तनिक सी डाँट-फटकार या शिकायत बहुत मायने रखती है। वह अनुशासन के मामले में बहुत कठोर है। अतः उसके कारण सभी सेवक अपने काम में सतर्क रहते हैं।

अन्य कई सेवक और एक नर्स भी डॉ० मधु के परिवार के अंग हैं। इन सबके अतिरिक्त बगिया में झोपड़ी के आकार का एक बड़ा सा पिंजरा रखा रहता है, जिसमें रंग-बिरंगी चिड़ियाँ चहचहाती रहती हैं। एक गोल पिंजरे में तोता है, जिसे बुआ ने 'राम' 'राम' कहना सिखा दिया है।

तीन, चार छोटे-बड़े कुत्ते भी डाक्टर की कोठी पर पले हुए हैं। इन कुत्तों को मधु ने कभी सुन्दर और कभी अपंग देखकर और तरस खाकर पाला था। आज तक वे उसके आश्रम में पल रहे हैं। दो अलसेशियन कुत्ते 'मोती' और 'रीता' का उपयोग सेवकों ने चौकीदारों की जगह स्थिर किया है। रात में नेपाली दरबान तेज बहादुर को भले ही नींद आ जाय, परन्तु रीता और मोती जैसे सजग प्रहरी झाड़ियों में पत्तों की खनक भी हो जाए, तो आधा घण्टा चिल्ला-चिल्लाकर वातावरण को भी सतर्क कर देते हैं, फिर कौन परिन्दा वहाँ पर फटफटाएगा।

● ● ●

उस बार दिल्ली से लौटने पर दिनेश कई रोज तक गुमसुम बना रहा। उसकी पत्नी सरिता, बार-बार उसका मन छू लेने की चेष्टा करती रही। उसकी निरन्तर सेवा करती रही है। वह....मनीष के कुशल समाचार पूछती रही थी.... और डाक्टर मृणाल का कुशल-क्षेम जानने को उत्सुक थी। और...दिनेश प्रत्येक बार उसको किसी न किसी बहाने टाल देता था। कभी नींद में होने का नाटक करता, कभी सिर-दर्द का बहाना कर उसे न बोलने का संकेत करता। मन की गहरी सतहों में वह लगातार घटना को छिपाने की चेष्टा में इतना परेशान होने लगा कि बड़ी कठिनाई से वह स्वयं पर नियन्त्रण रख पा रहा था।

दारोगा पीतमसिंह राजपूत ने कोर्ट में अपना बयान देते हुए बताया था कि गर्भ को समाप्त करने की चेष्टा में मनीष की नादानी से मृणाल की जान चली गई है।

न्यायालय के कटघरे में खड़ा मनीष दुखी था..सर झुकाए खड़ा था, लेकिन यह तथ्य प्रकाश में आ ही गया कि....मृणाल की मृत्यु उसकी नासमझी का... उसकी कठोरता का परिणाम था। अपनी इकलौती बेटी की मौत का सदमा श्रीमती घोष सहन न कर पाईं। हफ्तों वह पागल-सी दिल्ली की सड़कों पर दौड़ती रहीं और एक दिन ऐसी लुप्त हो गईं कि फिर उन्हें किसी ने नहीं देखा।

मृणाल की मौत की चर्चा सुनते ही सरिता चीखकर बेहोश हो गई। होश आने पर उसे सब स्पष्ट दिखने लगा। अब उसकी समझ में आया कि क्यों दिनेश बार-बार उसे दिल्ली जाने से रोकता था।... क्यों उसे मायके में नहीं रहने देता था और स्वयं ही साथ जाकर मिला आता था। वर्षों से एक दिन से अधिक उसे दिल्ली में रुकने नहीं दिया। कभी मुन्ने की काल्पनिक तकलीफ का बहाना... कभी दद्दा जी की चिन्ता...कभी माँ जी के मन न

लगने की बात कहकर अपने साथ ही वापस ले आता था। जब भी कभी उसने अस्पताल जाकर मृणाल से मिलने की बात कही, दिनेश उसे डाँट देता और वह चुप रह जाती। वह विस्फारित नेत्रों से दिनेश की ओर देखती रह जाती थी और दिनेश का क्रोध, दिनेश की झुँझलाहट सरिता के थोड़े से दिल्ली प्रवास को भी कटु बना देती थी।

सरिता कभी-कभी हैरान भी होती कि मृणाल का नाम लेने, उससे मिलने का प्रयास करने पर दिनेश क्यों क्रोधित हो उठता है और नए-नए शब्दों में नई बात की आड़ लेकर वह अपना क्रोध प्रदर्शित करने लगता है। कभी वह कहता—'मनीष तक ही मृणाल की दोस्ती ठीक है'··· कभी कहता—'बंगाली लड़की के साथ मेल-जोल बढ़ाना चाहोगी, तो घर में कोहराम मचेगा···मृणाल ने कभी घर के बर्तन छू लिए तो माँ दिन भर भूखी रह जाएँगी।' कभी कहता—'वह अंग्रेजी पढ़ी लिखी अपटू-डेट घराने की लड़की··· फौजी अफसर की बेटी है···हमारे माहौल से बिल्कुल अलग···' कभी वह कहता—'बिना बाप की लड़की, पैसे की गुलाम थी, मनीष पैसा फूंकता था, आज जाने किसकी···"

सरिता को ये सारे तर्क बिच्छू के डंक जैसे चुभते थे। वह सोचती, क्या पैसा ही सब कुछ है···? मुन्ने के जन्म के समय कितनी सेवा की थी मृणाल ने····। पितृहीन लड़की है तो क्या उसे बहिन मानकर····बेटी मानकर उससे सम्बन्ध कायम नहीं रखा जा सकता···दुलार नहीं किया जा सकता।

क्या रखा है बंगाली···बिहारी····गुजराती कह देने में। दद्दा जी जमींदार हैं। हर जाति के लोग भेंट देने आते हैं। वह सब पच जाती है। आमों के मौसम में नवाबों के बागों में आमों की नौरोज होती है। रात-रात भर उनके साथ ताश खेला जाता है। शतरंज की बेगम, बादशाह, पैदल उठते-गिरते रहते हैं। दीपावली, होली, ईद और बड़ा-दिन किसी एक घर में मनाया जाता है और उत्सव में सम्मिलित होनेवाले, उत्सव की शोभा बढ़ानेवाले दद्दा जी के मित्रगण जात-पाँत याद नहीं करते। इत्र-केवड़े की सुगन्धि में भीगी रंग की फुहारें और चन्दन की गंध में सनी अबीर-गुलाल की बुकनी दद्दा जी के मित्रों

र बिखेरने में कब भेद-भाव करती है···सबको एक साथ ही प्रेम और आनन्द में सराबोर कर देती है।

एक बार, चमारों की पुलिया पर हिन्दू-मुसलमान संघर्ष हो गया। नवाब अब्दुल करीम की बेगम सात बच्चों को लेकर इस घर में ही छिपी रही थीं। और···वह भी एक-दो नहीं, पूरे पन्द्रह दिन तक···।

कहाँ तक तर्क करती····। वस्तु-स्थिति ने उसे जिस दुनियाँ में लाकर पटक दिया था उसकी तो उसने कल्पना भी न की थी। दो दिन तक उसकी आँखों से आँसू बहते रहे····। मन के तर्क-वितर्कों ने उसे इतना झकझोर डाला कि उसका दुख मृणाल की मौत से हटकर उसे अपनी जिन्दगी लगने लगा।

उसे ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी ने उसे एक गहरे अंध कूप में डाल दिया है। अन्धकार प्रतिक्षण बढ़ता ही जा रहा है। उसके पैरों के नीचे सूखे हुए कुएँ की चटकी हुई दरारों वाली धरती है और····ऊपर से अनेक चेहरे झाँक रहे हैं। इन चेहरों की मुद्राएँ विकृत हैं, कठोर भाव-भंगिमाएँ हैं और सिर पर विश्वासघात के सींग उगे हुए हैं। अनेक चेहरों की भीड़ में वह तीन चेहरे पहचान रही है। ये हैं—दद्दा जी, दिनेश और मनीष के····। वह अकेली है और चारों ओर से घिर गई है। कितने ही जोर से चीखे; उसकी पुकार सुनकर कोई द्रवित नहीं होगा····नहीं होगा···नहीं····नहीं····हीं····ई ई··।

'नहीं····नहीं' कहते और गरदन को झटका देते हुए वह फिर चीख पड़ी थी। दिनेश उसे जगा रहा था—"सरिता···सरिता····आँखें तो खोलो।'

सरिता के कपोलों पर आँसुओं की धाराएँ बह रही थीं। दिनेश के स्नेह और विनय में भीगे शब्दों ने उसके स्वप्न के दिनेश को कहीं दूर फेंक दिया। यह उसका स्वामी था···अनेक दुखों को अपने हृदय में छिपाए था और व्यवहार में उसे दुनियाँदारी निभानी थी। सरिता तो रोकर जी हल्का कर लेती···परन्तु दिनेश दिल पर बरसों से जमी हुई शिला को कैसे हटाता ?

दिनेश की झुकी हुई दृष्टि और दुखकातर स्थिति ने पहली बार सरिता को इस प्रकार झकझोरा···। छोटे भाई का अपराध मानो दिनेश ने स्वयं ओढ़ लिया हो। मनीष आज भी सीना तानकर चल सकता था।

मधु का जीवन···सुशील चाचा और चाची का जीवन, दद्दा जी की बीमारी···माँ जी का वीतराग होते जाना···ऐसा लगता है मानो सबका जीवन अलग-अलग दिशाओं में प्रवाहित होने लगा है। और उस बिखराव का, भटकाव का, विच्छिन्नता का, कारण है—स्वयं दिनेश···।

सोचते-सोचते दिनेश के माथे पर पसीना छूटने लगा। उसकी यह स्थिति देखकर सरिता जैसे सचमुच ही नींद से जाग उठी। भीगे मन से विनय के स्वर में दिनेश कह रहा था,—"सरिता···सरिता, मेरे अपराध की सजा सिद्धार्थ को मत दो···। तुम्हारे यों पड़े रहने से देखो, उसका क्या हाल हो रहा है। स्कूल से बीच ही में उठ आता है, न कुछ खा-पी रहा है, न खेलने जा रहा है। माँ पूजा में बैठी हैं। मुझे क्षमा कर दो सरिता···मैंने जो जहर चुपचुप पिया था वह घर की भलाई के लिए पिया था···तुमसे दुराव करने के लिए नहीं···।"

दिनेश की आवाज रुँध-सी गई थी। सरिता चारपाई से उठी। साड़ी के पल्ले से अपनी आँखें पोंछ डालीं। और मुस्कुराती हुई पति से लिपट गई। उसकी पीठ को थपथपाते हुए दिनेश ने अपने आँसू पी लिए। आज वह अनुभव कर रहा था कि उसके मन का बोझ बाँट लेने के लिए सरिता भी उसके साथ चल पड़ी है।

+++

: १५ :

विकट समस्या सामने आ गई। हरिमोहन ने, मनीष के डाक्टरी पास कर लेने पर उसे घर रहकर प्राइवेट प्रैक्टिस करने की सलाह दी थी। उन्होंने

सोचा था कि नौकरी में परवशता रहती है। घर रहकर अपना व्यवसाय करना ज्यादा सम्मानजनक है।

साहू हरिमोहन के पास पैसे की कमी न थी और कई बीमारियों ने उनके शरीर को जर्जर बना दिया था। वह चाहते थे कि उनके पुरखों ने जो लक्ष्मी संचित की है, उसे उनके बच्चे भोगें। अच्छा जीवन जिएँ और आनन्दपूर्वक रहें। सरकारी नौकरी में क्या मिलेगा मनीष को? जगह-जगह के तबादले, वेतन के नाम पर गिने-गिनाये रुपए। कहीं आवास की समस्या रहेगी तो कहीं घर-गृहस्थी जोड़ने में कठिनाई होगी। परदेश में न तो इतना बड़ा महल-जैसा घर मिलेगा और न ही इतने नौकर-चाकरों का आराम रहेगा।

इन सबके अतिरिक्त उनके मन में सन्देह का एक कीड़ा कुलबुलाने लगा था। वह समझ रहे थे कि जो लड़का एक हत्या कर सकता है, विवाह के तुरन्त बाद अपनी बुद्धिमान् और सुशील पत्नी को छोड़ सकता है। वह बाहर रहकर स्वच्छन्द जीवन में पता नहीं और क्या क्या गुल खिलाए। न मालूम कब, कहाँ और कौन सी मुसीबत खड़ी कर दे।

मनीष ने मृणाल की मृत्यु के बाद जो मानसिक यातना भोगी, उससे उसके स्वभाव में विचित्र-से परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे। कभी वह बहुत आनन्द और उल्लास में रहता और कभी उदासी उसे इतना दयनीय बना देती कि उस घेरे में छटपटाते हुए जिन्दगी एक भार, एक अभिशाप लगने लगती। उस छटपटाहट की सी दशा में प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि उसे जैसे डंक मारने लगती थी। पढ़ाई के शेष दिन उसने स्वयं को अध्ययन में डुबोकर काट दिए। कोई साथी या मित्र ऐसा नहीं था, जिससे वह अपना सुख-दुख कह लेता। अवकाश के क्षणों में या तो कुछ दूर घूमने निकल जाता, अन्यथा अपने कमरे में ही चुपचाप पड़ा रहता।

कॉलेज का जीवन उसे कैद-जैसा प्रतीत होने लगा। सबकी दृष्टि में वह हत्यारा था। हत्या भी एक ऐसी लड़की की, जो कॉलेज के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का प्राण थी। पढ़ाई से भी कभी-कभी उसका मन उचटता था, परन्तु इस जीवन से शीघ्र छुटकारा पाने के लिए, अपने प्रति पनप गए

अविश्वास को उखाड़ फेंकने और लोगों की तनिक भी सहानुभूति प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि वह कुछ अच्छा काम कर दिखाए। उस वर्ष कठिन परिश्रम करने पर भी उसे अच्छे नम्बर न मिल सके। फिर उसके निरन्तर मौन और उसकी अध्ययनशीलता ने दूसरे वर्ष लोगों को प्रभावित कर लिया और वह अच्छे अंक प्राप्त कर सका।

उन दो वर्षों के समाप्त होने पर उसने अनुभव किया कि साथियों और अध्यापकों के व्यवहार में अब उतनी कटुता नहीं रही। उसने अनुमान लगाया कि घर में भी दद्दा जी और दिनेश भैया उसे माफ कर चुके होंगे। यही सब सोचकर उसने घर रहकर प्राइवेट प्रेक्टिस करने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। नीचे के दो कमरे जिनके दरवाजे बाहर की ओर ही थे और आगे का बरामदा उसने अपनी क्लीनिक के लिए व्यवस्थित कर लिया और काम आरम्भ कर दिया।

इस व्यवस्था में कुछ ही दिन व्यतीत हुए थे कि मधु से उसके विवाह का प्रसंग उठ खड़ा हुआ। विवाह होना···सम्बन्ध-विच्छेद होना···और उसके पूर्व हुई अप्रिय घटनाओं के प्रसंग की स्मृति बड़ी कष्टदायक थी। मनीष ने अपने मन को संयत रखने का यथासाध्य प्रयत्न किया।

उसके नैनीताल से लौटने पर दद्दा जी और दिनेश यही समझते रहे कि मधु से मनीष की साधारण-सी खटपट हुई होगी। समय बीतने पर सब ठीक हो जाएगा। लेकिन मधु के लखनऊ मेडिकल कॉलेज में दाखिल हो जाने पर उन्हें विश्वास हो गया कि दोबारा किसी पागलपन का दौरा मनीष को पड़ा है, अन्यथा मधु-जैसी सुशील कन्या के साथ निर्वाह न होना आश्चर्य-जनक ही है।

अलग-अलग ढंग से विचार और व्यवहार करनेवाले व्यक्ति घर में दो समूह में बँट गए। एक ओर दद्दा जी और दिनेश थे, जो अप्रत्यक्ष ढंग से मनीष की आलोचना करते थे, उसके क्रिया-कलापों पर टीका-टिप्पणी करते थे।

दूसरी ओर, माँ जी, सरिता और मनीष का छोटा भाई गोपाल थे, जो मनीष के प्रति सहानुभूति और स्नेह का प्रदर्शन करते थे। ये लोग बात-बात

में मधु को भला-बुरा कहते। मनीष का मन रखते। उसे तनिक भी असुविधा न होने देते। यहाँ तक कि सुशील चाचा और चाची पर ही इस घटना क्या सारा उत्तरदायित्व थोपते थे।

मनीष ने दो-चार बार कहा भी कि क्यों व्यर्थ ही किसी की आलोचना करते हो, मैं ही मधु के साथ नहीं रहना चाहता था। सुशील चाचा को क्या दोष देना····चाची सीधी-सादी हैं····उनका क्या अपराध है? मधु की इच्छा डाक्टरी में जाने की थी, वह चली गई। इसमें किसी का क्या बिगड़ा? सरिता बीच ही में टोककर कहती, "बस-बस रहने दो अपनी आदर्शवादिता। क्या साथ रहकर सम्बन्ध बनाए रखकर डाक्टरी की पढ़ाई नहीं हो सकती थी····कुलों की बदनामी हुई और दो साल तपस्या करके चहेती का इन्तजार किया, अब समय आया चिड़िया फुर्र से उड़ गई। कहते हो, क्या हो गया? हो नहीं गया, होगा····। मेरी मानो तो···?"

जब भी दिनेश के कानों में इस प्रकार की ध्वनियाँ पड़तीं, वह सरिता को डाँटकर चुप करा देता। धीरे-धीरे दिनेश की उपस्थिति में ऐसा आलाप-प्रलाप स्वयं ही बन्द हो जाता और घर में मौन सा छाया रहता।

प्रायः सरिता मनीष के आगे-पीछे घूमती रहती। उसके खाने-पीने का बहुत ख्याल रखती। संध्या समय वह कभी वह अँधेरे कमरे में बैठा रह जाता, तो सरिता जाकर बिजली जला आती। उसे हाथ पकड़कर आँगन में ले आती और कहती, "संध्या समय अँधेरे में नहीं बैठे रहते···अँधेरे में नहीं पड़े रहते। कुछ घूमो-फिरो···खुली हवा में मन बहलेगा। कब तक याद करते रहोगे···"

पानी की बूँद निरन्तर गिरती रहे तो पत्थर पर भी प्रभाव पड़ जाता है। मनीष तो हाड़-मांस का पुतला था। मनुष्य था। सुख-दुःख से प्रभावित होता था। सरिता ने कह-सुनकर उसे क्लब जाने को प्रेरित किया।

× × × ×

नगर में साहू हरिमोहन का परिवार भली-भाँति जाना-पहचाना था। डाक्टरी पास नौजवान लड़का। देखने में स्वस्थ और सुन्दर। क्लब के सदस्यों में, जिनमें अनेक अफसर, पुलिस अधिकारी, डाक्टर, इंजीनियर, वकील तथा

अन्य ऊँचे सरकारी अफसरों के अतिरिक्त नगर के धनी-मानी सेठों के शौकीन-मिजाज नवयुवक बेटे भी थे। इस नए समुदाय में मनीष कुछ ही दिनों में लोकप्रिय हो गया। एकदम बुझा-बुझा-सा रहनेवाला मनीष खूब विनोदप्रिय और हँसमुख दिखलाई देने लगा। क्लब के प्रायः सभी सदस्यों से उसका व्यक्तिगत सम्पर्क हो गया। इस मेल-मिलाप का उसके व्यवसाय पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा। उसकी प्रैक्टिस अच्छी चल पड़ी। उसके औषधालय में निरन्तर भीड़ बढ़ने लगी। उसे यश और धन भी अधिक मिलने लगा।

स्टेट बैंक के मैनेजर मेहरोत्रा की बीस वर्षीया कन्या 'कल्पना' कल्पना-जैसी ही मोहक थी। आकर्षक व्यक्तित्व की धनी। कल्पना की संगीत और नृत्य में भी अच्छी गति थी। क्लब के उत्सवों में वह कई बार अपना संगीत और नृत्य प्रस्तुत कर चुकी थी। जब भी वह क्लब में आती, अधिक से अधिक नवयुवक उसके निकट रहना चाहते। हाँ, मनीष सदैव ही उससे दूर भागने की चेष्टा करता। अनेक बार लोगों के व्यंग भी उसके कानों से टकराए, परन्तु इस ओर उसने तनिक भी ध्यान नहीं दिया। ऐसी स्थिति में प्रायः यह देखा गया कि कल्पना स्वयं ही बार-बार मनीष को जा घेरती।

मनीष ने दिनेश के बड़े बेटे सिद्धार्थ के जन्मदिन पर क्लब के सभी सदस्यों को आमन्त्रित किया। उस दिन कल्पना कुछ अधिक ही सज-सँवरकर आई थी····दृष्टि मिलते ही वह सरिता के मन को भा गई। माँ जी को भी वह बहुत अच्छी लगी। अतः मनीष के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा गया। मनीष 'न' 'न' करता रहा परन्तु उसकी लम्बी-चौड़ी हवेली देखकर कल्पना के मन पर उसके वैभव का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने निश्चय लिया कर चाहे जैसे भी हो, मनीष से विवाह करना है।

बैंक-मैनेजर मेहरोत्रा जी ने काफी छान-बीन करनी चाही कि क्यों मनीष का पहली पत्नी से बिलगाव हुआ? अधिकांश व्यक्ति यही कहकर बात टाल देते थे—"साहब पैसे-वालों की माया निराली है···क्या जाने क्या बात रही हो?···परन्तु वह लड़की डाक्टरी पढ़ना चाहती थी, चली गई और अब तो वह लखनऊ की नामी-गरामी डाक्टरनी हो गई है। मनीष डाक्टर है। साधु

स्वभाव का अच्छा नौजवान है। चाहता तो अब तक एक क्या, दो-दो शादियाँ हो गई होतीं।"

मेहरोत्रा जी ने एस० पी० श्री रामदेव सिंह से भी जानकारी ली। रामदेव सिंह हरिमोहन के अन्यतम मित्रों में से थे। सारी क्लब-बिरादरी में केवल एक व्यक्ति दारोगा प्रीतम सिंह राजपूत ऐसा था, जिसने सन्देह व्यक्त किया—"डाक्टर मनीष चरित्र का विशेष अच्छा नहीं है। सुना गया है कि वह पीता बहुत है···हो सकता है उसमें कोई शारीरिक दोष हो, जिसके कारण उसकी पत्नी विवाह के चार दिन बाद ही छोड़ गई।"

एस० पी० श्री सिंह ने प्रीतमसिंह राजपूत को झक्की बनाकर चुप करा दिया और मेहरोत्रा को आश्वस्त कर दिया कि वे शौक से अपनी कन्या का विवाह मनीष के साथ कर दें।

मनीष की हल्की सी 'न' को मेहरोत्रा ने उसकी सज्जनता और संस्कार माना। उन्हें विश्वास था कि इतने बड़े घराने का स्वस्थ, सुन्दर, योग्य और सुशील स्वभाव के वर के साथ उनकी कन्या पूर्णतः सुखी रहेगी।

विवाह के समय मनीष न तो दृढ़तापूर्वक 'न' कह सका और न ही विशेष प्रसन्न था। उसकी निर्विकार सी मुख-मुद्रा कभी-कभी सरिता को भी उलझन में डाल देती थी। वह सोच रही थी, मधु के सीधे-सरल व्यक्तित्व की तुलना में कल्पना का सौन्दर्य बिजली की-सी चमक पैदा करनेवाला है। कल्पना पंजाबी लड़की है। सुना है, पंजाब के लोग बहुत व्यावहारिक और परिश्रमी होते हैं और कल्पना तो अनिन्द्य सुन्दरी भी है। मनीष का संन्यास एक दिन में छूमन्तर हो जाएगा।

मनीष और कल्पना का विवाह सम्पन्न हो गया। कल्पना के व्यक्तित्व का प्रभाव और उसका व्यवहार कुछ ऐसा था कि वह आते ही इस घर के वातावरण पर छाने लगी। घर के प्रायः सभी व्यक्ति उसकी इच्छाओं और रुचियों का विशेष ध्यान रखते। दिनेश के दोनों बेटों सिद्धार्थ और कपिल को भी कल्पना बहुत स्नेह करती। सरिता का मन उसने पहले ही मोह लिया था। अब अपने बच्चों के साथ बच्चों की ही भाँति कल्पना को घुली-मिली देखकर वह सुख और सन्तोष का अनुभव करने लगी। वह कल्पना को अपनी छोटी बहिन की तरह चाहने लगी।

कल्पना से विवाह हो जाने के पश्चात् मनीष के व्यवहार में फिर असामान्य-से लक्षण प्रकट होने लगे। कल्पना मनीष के अधिकाधिक समीप रहना चाहती और मनीष घर में साथ-साथ रहते हुए भी उससे दूरी बनाए रखने की कोशिश करता। अब अधिकांश समय वह घर से बाहर ही व्यतीत करने लगा। उसने मदिरा-सेवन की मात्रा बढ़ा दी।

कल्पना के निकट पहुँचते ही विचित्र सी घृणा और वितृष्णा का भाव उसकी आँखों में तैरने लगता। उसकी सामान्य सी बात पर भी वह क्रोधित हो जाता। वह उसकी ओर से दृष्टि बचा लेता और मन-ही-मन कुछ बड़बड़ाने लगता। हाँ, जब भी कहीं बाहर घूमने जाने का कार्यक्रम होता, वह आग्रह से, अनुरोध से और अधिकार से कल्पना के लिए नए परिधान का चयन स्वयं ही करता। सुन्दर वस्त्रों पर फबते हुए भिन्न-भिन्न डिजाइनों के अलंकार धारण कर कल्पना दर्पण के सम्मुख हो अपने सौन्दर्य को सँवार रही होती तो मनीष कह उठता, "आज क्लब में न जाने कितने मनचले दिल थाम के बैठ जाएँगे....आज जाने किस पर यह बिजली गिराई जाएगी....।"

कल्पना इस छेड़छाड़ का आनन्द लेते हुए घूमकर मनीष की ओर देखती परन्तु उसकी दृष्टि का मनीष से सामना नहीं हो पाता। मनीष बाहर जाते-जाते कह रहा होता, "चलो चलो, बहुत निहार चुकीं। देर हो जाएगी····जल्दी चलो····।"

निरंतर मनीष के सामीप्य के लिए ललकती, अतृप्त-सी कल्पना प्रसन्न बनी रहने का प्रयास करती हुई चुपचाप साथ-साथ चल देती। शायद····औरों पर अपनी तृप्ति का, अपने सुख का, सन्तोष का प्रभाव थोपने के लिए····! किसी पार्टी में बाँहों में बाँहें डाले दोनों को साथ-साथ प्रवेश करते देखकर अनायास ही लोगों की आँखों में चमक और ओठों पर मुस्कान फैल जाती थी। आनन्दमग्न साथियों में प्रायः ही किसी के मुख से निकल जाता था—"कितनी सुन्दर जोड़ी है।"

क्लब में कल्पना को पूर्ण स्वतन्त्रता थी कि वह अन्य लोगों के साथ हँस-बोल सके। साथ बैठकर खा सके और अपनी इच्छा से जहाँ चाहे, घूम सके। इन सब क्रिया-कलापों में किसी प्रकार की ईर्ष्या या द्वेष की भावना मनीष की आँखों में नहीं झलकती थी।

मनीष की इस उदार वृत्ति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा होती थी। मित्र कहते—'यार मनीष, तुम देखने में ही सुन्दर नहीं हो, तुम्हारा मन भी बहुत सुन्दर है।'

मनीष की यह बाह्य प्रशंसा ही मानो उसका जीवन-रस बन गई थी। इन सबसे वह प्रसन्न रहता। परस्पर सम्पर्क के व्यक्तियों में उसका विशेष आदर होने लगा। लेकिन, कुछ लोगों ने इस व्यवहार को उसकी दुर्बलता मानकर अवसर का लाभ भी उठाना चाहा। वे किसी-न-किसी बहाने कल्पना और मनीष को अपने घर आमन्त्रित करते। मदिरा के नशे में बेसुध पड़े मनीष के मित्र कल्पना से अश्लील परिहास करते, स्पर्श करने की चेष्टा करते और इन क्रिया-कलापों में कल्पना का सहयोग न मिलने पर उन्हें अपने मन्तव्य में सफलता न मिलती, तो भी अपनी कामुक दृष्टि से उसे पी जाना चाहते और मनीष के पुरुषत्व पर व्यंग्य किए जाते।

एक बार एस० पी० श्री सिंह के यहाँ पार्टी थी। नशे में झूमते हुए स्वयं सिंह ने मनीष को गाली देते हुए कल्पना से कह डाला, "डार्लिंग, हमारे रहते तुम किसी बात का मलाल न करना····वहाँ तुम्हें क्या मिलेगा····कुछ भी तो नहीं····आज नहीं तो कल तुम्हें हमारी बात माननी पड़ेगी····।" और उन्होंने चुटकी बजाते हुए कल्पना के कन्धे पर हाथ रख दिया। कल्पना की रेशमी साड़ी का पल्ला कन्धे से खिसक गया और सिंह मुस्कराए। तेजी से साड़ी सँभालती हुई कल्पना सोफे से उठी और मनीष का हाथ पकड़कर उसे लगभग घसीटती हुई-सी बाहर निकल आई।

घर पहुँचकर क्रोध और दुःख के आवेश से काँपती हुई वह बिफर कर मनीष से बोली, "मनीष, तुम्हारी ये पार्टियाँ मेरे वश की नहीं····मैं तो भर पाई इन भूखे भेड़ियों से····।"

दुःख के आवेग से उसके आँसू आ गए।

क्रोध और अभिमान से भँवें चढ़ाकर और तरेरते हुए मनीष ने कहा, "खबरदार, जो अब कभी जबान भी खोली तो जान से मार दूँगा। ये हजारों रुपए तुम्हारे बनाव-शृंगार पर खर्च हो रहे हैं, तुम क्या समझती हो घर में रखने के लिए मुझे पत्नी न मिलती? ये सब लोग मेरे धन्धे में सहायक हैं। मेरे पास मरीज भेजते हैं। लोगों से मेरे पेशे के गुणों की तारीफ करते हैं। इन लोगों को खुश न रखूँ, तो क्लीनिक में यों मरीजों की भीड़ न लगे।"

"·····।"

"कुलवधू बनने का ही शौक था तो क्यों क्लब में तितली बनी घूमती रहीं। अपने बाप के सामने परपुरुषों की बाँहों में नाचती रहीं। तब तुम्हारा आत्म-सम्मान कहाँ गया था? मैं जो चाहूँगा करना पड़ेगा। रहना हो रहो; नहीं तो जाओ जहन्नुम में।"

कल्पना मानो आकाश से धरती पर आ गिरी। रात भर बिलख-बिलखकर रोती रही। दूसरे दिन न तो बिस्तर से उठी और न ही उसने कुछ खाया-पिया। मनीष जब क्लीनिक में व्यस्त हो गया और कल्पना अपने कमरे में

अकेली रही थी, तो सरिता ने कल्पना की मनुहार की। उसे सांत्वना देते हुए कुछ खिलाया-पिलाया। सरिता के स्नेह ने उसके दुःखी मन को छू लिया। आँसू बहाती हुई वह उसके सम्मुख सब कुछ कह गई, जो इतने दिनों से मन में छिपाए हुए थी।

सरिता ने समझाया, "तुम्हारा विद्रोह नहीं, तुम्हारा स्नेह ही मनीष के मन को भर सकेगा। मनीष ने ऐसा घाव खाया है जो आसानी से नहीं भरेगा। कल्पना, तुम्हारा त्याग, तुम्हारा प्रेम ही उसके मन का सहारा बन सकता है। सब सन्देहों को मन से निकाल फेंको और उसे समझाने का प्रयत्न करो।"

विवाह के दो वर्षों के बाद वह पहला दिन था, जब कल्पना के सब्र का बाँध टूट रहा था। उसके पिता का कलकत्ता तबादला हो गया था। अतः इन दिनों वह कुछ ज्यादा ही अकेलापन अनुभव कर रही थी। फिर भी, क्लब की रँगीली दुनियाँ की जगमगाहट में उसे डुबोए रखकर मनीष अपने पाप के आभास और अपने प्रेम के स्पर्श दोनों से ही उसे दूर रखना चाहता था। उस दिन जब सरिता और कल्पना की वार्ता उसके कानों में पड़ी, तो वह आशंकित हो उठा कि कहीं दिनेश भैया ने उसके पाप की चर्चा सरिता भाभी से न कर दी हो। और यदि भाभी ने कल्पना से सब कुछ कह डाला तो···। वह एक मरीज देखकर लौट रहा था। बाहर से ही उसने दोनों की बातों का कुछ अंश सुना। कमरे में प्रवेश करते ही गरजकर बोला, "भाभी, इस जैसी औरतों के चोंचले खूब जानता हूँ। तुम जाओ अपना काम देखो। हमलोगों के बीच में पड़ने की जरूरत नहीं है। एक रिश्ते ने निहाल कर दिया, अब और क्या बाकी है?"

मनीष के मुँह से ये शब्द सुनकर सरिता अवाक् रह गई। वह स्वयं समझती थी कि उसकी पूरी सावधानी के बावजूद मनीष कभी-कभी क्रोधित हो जाता है। वह यह भी स्वीकार करती थी कि मधु के साथ सम्पर्क बढ़ाने में उसका ही मुख्य हाथ रहा है। मधु के लखनऊ चले जाने पर वह मन-ही-मन छटपटाती और पश्चात्ताप करती थी कि कैसे पलक झपकते ही सम्बन्धों की नाव उलट-पुलट हो गई···डूब गई···उसे कुछ अवसर मिला होता तो शायद वह मधु को समझा लेती। लेकिन, मनीष ने नैनीताल से लौटने पर क्रोधित होकर

स्वयं ही सरिता को उस घर में न जाने देने के लिए विवश-सा कर दिया था। और मधु भी कितनी निर्मम निकली··कभी तो मुझे बतलाती·· कभी तो चर्चा करती कि उसे मनीष से क्या शिकायत है ? उसके मन में क्या दुःख है···कुछ तो मन खोला होता। दोनों ने इतना अवसर ही न दिया कि भूल सुधार की तनिक भी सम्भावना हो सकती।

उस दिन सरिता ने अनुभव किया कि मधु से सम्बन्ध-विच्छेद का कारण मनीष उसी को समझता है। यदि इस प्रकार का सन्देह मनीष के मन में दृढ़ है, तो स्वाभाविक ही है कि कल्पना के साथ उसे बातें करते देखकर भी क्रोध आएगा। ठीक भी है, उसे किसी के बीच में बोलने का क्या अधिकार है ? वह किसी को सुख नहीं दे सकती, तो किसी के दुःख का कारण भी क्यों बने ?

उसकी आँखें भर आईं। कठिनाई से स्वयं को संयत कर उसने इतना ही कहा, "ठीक कहते हो मनीष भैया···तुम्हारे निजी मामलों में मुझे नहीं बोलना चाहिए··· फिर कभी मेरी जरूरत हो···।"

सरिता का गला रुँध-सा गया। वह भारी मन से उठकर बाहर चली गई।

कल्पना का मन हुआ कि मनीष से बातें न करे; परन्तु सरिता का स्नेह उसे झकझोर गया। स्नेही सरिता भाभी के साथ मनीष का ऐसा व्यवहार उसे अमानवीय-सा लगा। जो व्यक्ति तन-मन से इतना चाहता है, उसका इस प्रकार अपमान उसे न्यायसंगत न लगा। वह बोली, "आपको कभी-कभी क्या हो जाता है ? माँ के समान स्नेह और चिन्ता करनेवाली भाभी को इस प्रकार अपमानित करना क्या अच्छी बात है ?"

"बस-बस, रहने दो यह खोखला आदर्श।"

मनीष कुछ कठोर शब्द कहने ही जा रहा था कि एकाएक उसके मन में भय समाने लगा। यदि भाभी दिनेश भैया से उसकी शिकायत करें, तो भैया उसे कितना गिरा हुआ समझेंगे··लेकिन····भैया की दृष्टि में वह जितना गिर चुका है, उसके आगे समझने या न समझने की बात ही कहाँ रह जाती है ? हाँ,

यह अवश्य है कि या तो भैया ने भाभी से चर्चा नहीं की है···या भाभी मौका देखकर वे सब बातें कल्पना को बतला देने की चेष्टा में हों। अच्छा यही होगा कि दोनों को मिलने ही न दिया जाय। इसके लिए उसे कल्पना के सामने कुछ झुकना पड़ेगा। कुछ अभिनय करना पड़ेगा···इन्हीं तर्क-वितर्कों में मन को नियन्त्रित करते हुए वह कुछ मधुर स्वर में बोला, "रानी, एक बात है। सरिता भाभी कैसी ही सती-साध्वी हों, कितनी ही ममतामयी हों, पर याद रखो, तुम्हारे प्रति प्रेम का यह नाटक कुछ मतलब से करती हैं···कि तुम उनके सामने अपना दुखड़ा रोओ और वह भैया, अम्मा और दद्दा जी की नजरों में हमें गिराकर, धीरे-धीरे घर का सब कुछ हड़प लें।···तुम जानती हो कि तुम्हारे बड़े भैया ने क्या-क्या गुल नहीं खिलाए हैं। बाबू जी ने लाख सिर पटका, परन्तु अमृतसरवाली कोठी महेन्द्र भैया ने अपने नाम करा ही ली।"

कल्पना हैरान थी। कुछ क्षणों में ही मनीष के व्यवहार में कितना परिवर्तन दिख रहा है। अभी आदर्शवाद की धज्जियाँ उड़ा रहा था···फिर सरिता भाभी की निन्दा···और अब उसके महेन्द्र भैया पर व्यंग्य। वह बोली, "मैं जानती हूँ, घर भर में महेन्द्र भैया की बहू से ही मेरा पत्राचार चलता है। अम्मा और बाबू जी तक को पत्र नहीं लिख पाती। क्या तुम चाहते हो कि मैं सारी दुनियाँ से कट जाऊँ?"

"मैं यह कब कहता हूँ? तुम अवश्य ही सबसे सम्पर्क रखो; फिर भी अपने निकट रहनेवाले लोगों से सावधान रहो···" और कल्पना के कपोलों को स्नेह से थपथपाते हुए उसने कहा, "नाराज हो गई पगली, भाभी कितनी ही अच्छी हों, न तो तुम्हारे बराबर सुन्दर हैं और न तो उतनी पढ़ी लिखी···मित्रता समान बौद्धिक-स्तर पर ही···।"

"बस करो, मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम नहीं चाहते, भाभी के निकट रहूँ···अब तुम्हें कोई शिकायत न होगी।"

"और तुम्हें भी।" मनीष ने सस्नेह कहा।

● ● ●

:१७:

उस दिन मनीष सुबह पाँच बजे ही घूमने निकल गया था। किन्तु प्रतिदिन की अपेक्षा ज्यादा दूर। सात बजने वाले थे। वह अपने मित्रों के साथ घूमकर लौट रहा था। गिरीशचन्द्र एडवोकेट और डाक्टर अविनाश का प्रायः ही प्रातः भ्रमण में साथ हो जाता था। प्रातः भ्रमण में देश की, समाज की, भ्रष्टाचार और मँहगाई की समस्याओं पर बातें होती रही थीं, लेकिन उस दिन मनीष मौन रहा। बार-बार उसके माथे पर पसीना झलक आता था। एकाएक वह गिरीशचन्द्र से बोला, "यार, मुन्नी (दीपा) अभी दो साल की ही है। मैं सोच रहा हूँ, देहरादून या मसूरी कॉनवेंट में उसका दाखिला हो जाय तो अच्छा हो।"

"मनीष, एक बेटी के बाप बनते ही तुम्हें परेशानी होने लगी। दीपा अभी छोटी है। अच्छा है, कुछ दिन और माँ के पास रह ले।"

"नहीं दोस्त, परेशानी नहीं! बात यह है, मैं चाहता हूँ दीपा को अच्छी से अच्छी शिक्षा दिलवाऊँ। घर रहकर अम्मा और भाभी के लाड़ में बिगड़ती जा जा रही है।"

"छोड़ो भी बेकार की चिन्ता करते हो"—विषय को बदलते हुए गिरीशचन्द्र ने कहा, "तुम्हारे भाई गोपाल ने तो गजब कर दिया मनीष, बड़ा तेज निकला वकालत में। दीपा के जन्म के समय से ही तो उसने मेरे साथ काम शुरू किया था। केवल दो वर्ष हुए हैं और वह कहाँ-से-कहाँ पहुँच रहा है।"

मनीष का घर सामने दिखाई दे रहा था और गली में भारी भीड़ जमा हो गई थी। मनीष को तेज पसीना आने लगा। यों तो गिरीशचन्द्र और अविनाश रोज गली के मोड़ से ही आगे चले जाया करते थे, लेकिन आज मनीष के मकान के सामने भीड़ देखकर हड़बड़ाते हुए दोनों साथ-साथ चले आए। मनीष

के मुख पर दुःख और झुँझलाहट के मिश्रित भाव तैर आए। रुआँसी आवाज में उसने कहा, "लगता है, आज दद्दा जी को फिर दौरा पड़ गया है।"

"मनीष, उधर तो दद्दा जी पूरी तरह स्वस्थ थे। अभी कल ही तो मुझे ब्लड प्रेशर देखने को बुलाया था।" अविनाश की आवाज भीगी-भीगी सी थी।

बड़ी कठिनाई से भीड़ को हटाते हुए तीनों ने घर में प्रवेश किया। अन्दर जाकर देखा, अम्मा और भाभी बिलख-बिलखकर रो रही हैं। गोपाल की आँखें लाल थीं और गोपाल की बहू के भी आँसू रुक नहीं रहे थे। सरिता भाभी नन्हीं सी दीपा को छाती से लगाए थीं और दीपा शोर मचा रही थी—"मम्मी पास जाऊँगी···मम्मी पास जाऊँगी।"

दिनेश के बेटे सिद्धार्थ और कपिल, दद्दा जी के पास सहमे हुए से बैठे थे। भारी कदमों से जीने की सीढ़ियाँ पारकर मनीष अपने कमरे की ओर बढ़ा। उसके कमरे में पहुँचकर गिरीशचन्द्र और अविनाश अवाक् रह गए। वहाँ बिस्तर पर कल्पना की मृत देह···जलकर झुलस जाने से जगह-जगह उसकी खाल उधड़ आई थी। उसके शरीर पर वस्त्र भी पूरे न थे। बाईं टाँग सीधी फैली थी और दाईं थोड़ी ऊँची उठी हुई थी। जिस बिछावन पर वह लेटी थी, वह पूरा जला हुआ नहीं था वरन् उसमें स्थान-स्थान पर जलने के धब्बे पड़ गए थे।

कल्पना का चेहरा तनिक भी विकृत नहीं था। उसके होंठ कुछ फीके पड़ गए थे। कहीं-कहीं से जली फटी नाइटी से उघड़ा हुआ उसका संगमरमरी बदन झांक रहा था। फर्श पर दियासलाई की जली हुई तीलियाँ पड़ी थीं। एक कोने में 'ऐसो' का डिब्बा था, उसमें सम्भवतः मिट्टी का तेल रहा होगा। आश्चर्य की बात थी कि एक प्लास्टिक की बाल्टी में थोड़ा पानी और पास ही एक मग भी रखा था। कल्पना का बिस्तर जले हुए स्थानों पर गीला भी था। उसके शरीर के वस्त्र भी कहीं-कहीं भीगे हुए दिखलाई दे रहे थे।

गोपाल ने बतलाया कि रात को दीपा कहानी सुनते-सुनते सरिता भाभी के पास सो गई थी। अभी उठकर 'मम्मी' 'मम्मी' कहने लगी। सरिता भाभी रसोई में थीं। महरी बाहर बरतन माँज रही थी। माँ जी पूजा में थीं। नौकर

छोटे झाड़ू लगा रहा था। दीपा कल्पना के कमरे का दरवाजा थपथपाती रो रही थी। गोपाल ब्रश करते हुए उधर से निकला, दरवाजा बन्द देखकर उसने आवाज दी,—"कल्पना भाभी···कल्पना भाभी।"

जब अन्दर से कोई आवाज न आई, तो उसे कुछ सन्देह हुआ। उसने किवाड़ों को धक्का दिया, तो ऊपर की चटकनी का बोल्ट उखड़कर धरती पर आ गिरा और दरवाजा खुल गया। दरवाजा खुलते ही मिट्टी के तेल की गन्ध और जलांध आई। उसने पूरा दरवाजा खोल दिया। अन्दर का दृश्य देखा, तो उसके मुँह से चीख निकल गई।

घर के लोग दौड़ पड़े। कुहराम-सा मच गया···अनहोनी···अप्रत्याशित-सी घटना···। आवाज सुनकर पड़ोस के लोग भी आ गए और किसी ने पुलिस को सूचना दे दी। आते ही दारोगा ने सबको कमरे से बाहर कर दिया। शव को उसी स्थिति में पड़ा रहने दिया और एक चादर कन्धे तक ओढ़ा दी। कमरे की प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में नोट लिखने लगा।

यह सब हो ही रहा था कि मनीष लपकते हुए अन्दर पहुँचा और कल्पना के शव को गले लगाने की चेष्टा करने लगा। वह रोता जाता और अपने बाएँ हाथ से सिर पीटता जाता···"हाय कल्पना, यह क्या कर डाला तुमने! हाय कल्पना!"

मनीष की हृदयविदारक रुलाई से उपस्थित जन-समुदाय शोकाकुल हो उठा। परन्तु, मनीष को शव के पास ठहरने नहीं दिया गया और दारोगा ने सहानुभूतिपूर्वक कहा, "डाक्टर साहब, धैर्य से काम लीजिए। जो होना था, हो चुका। अपनी बच्ची को सँभालिए और हमें अपना काम करने दीजिए।"

दारोगा के अन्तिम वाक्य में कुछ रुखाई-सी थी। अतः डॉ० अविनाश और गिरीशचन्द्र दोनों ही मनीष को सँभालते हुए कमरे के बाहर ले आए।

लोगों में कानाफूसी हो रही थी। कोई कह रहा था, "गैर जात में शादी की। मेम साहब को लोगों में नचाने ले जाते थे। जल के न मरती, तो क्या करती।"

"इसीलिए तो बड़े घरानों में पहले खानदान देखकर व्याह होता था। देखा, बहू ने दोनों कुलों की नाक कटा दी।"

"ऊँचे महलों में क्या-क्या राज छिपे हैं, कौन जानता है ?"

"हत्या-भी हो सकती है..."

"जरूर...हत्या कर दी होगी, कौन कहे...?"

"अरे, हत्या कहाँ से होगी, सुना है, दरवाजा अन्दर से बन्द था। कुंडा टूटा पड़ा है।"

"आज के जमाने में सब हो सकता है।"

"हाँ भाई, बखत-बखत की बात है। कहाँ साहू किशन सिंह का जमाना... और कहाँ आज के ये नए नवाब...।"

जितने मुँह उतनी ही बातें हो रही थीं। दारोगा ने फोटोग्राफर बुलाकर चित्र भी लिए। घर के सब लोगों के बयान नोट किए और कहा, "शव पोस्ट-मार्टम के लिए जायगा।"

शव परीक्षा की बात पर मनीष के पिता हरिमोहन ने आपत्ति की। आँसू पोंछते हुए उन्होंने कहा, "दारोगा जी, जो कुछ दण्ड देना था, भगवान् ने हमें दे दिया। इस बुढ़ापे में यह दुःख देखना भी बदा था। अब चीर-फाड़ करके इसकी मिट्टी मत बिगाड़ो। हमारे घर का भी कुछ ख्याल करो। आज एस. पी. साहब यहाँ नहीं है....आप ही...।"

"नहीं साहू साहब, यह नहीं होगा। हमें तो खाना पूरी करनी ही है। साहू साहब, आपकी इज्जत हम अपनी इज्जत समझते हैं। आप डरें नहीं। एस. पी. साहब यहाँ नहीं हैं, तो क्या हुआ। मैं तो हूँ।" दारोगा ने कहा।

और शव पोस्टमार्टम के लिए ले जाया गया। शव-परीक्षा कराई गई। उसके बाद कल्पना का दाह-संस्कार कर दिया गया।

दारोगा ने अपनी रिपोर्ट में हत्या की आशंका व्यक्त की। उसने लोगों से जो बयान लिए, उसके आधार पर उसे लगा कि मनीष ने पूर्वनियोजित ढंग से कल्पना की हत्या की है। यह आत्महत्या का नहीं, वरन् हत्या का केस है।

● ● ●

दारोगा ने मनीष के कमरे को सील कर दिया। कल्पना के पिता, मेहरोत्रा जी ने, कल्पना द्वारा लिखे गए सभी पत्र अदालत के सम्मुख प्रस्तुत कर दिए।

महेन्द्र भैया की पत्नी, रीता को, कल्पना पत्रों में सारी व्यथा-कथा लिख देती थी। उन्हीं पत्रों से पता चला कि विगत तीन-चार माह से मनीष और कल्पना में बेटी के जन्म को लेकर विवाद चल रहा था। कल्पना के ज्यादा उत्तेजित होकर बोलने की दशा में, मनीष उसे नींद का इंजेक्शन दे देता था। इन इंजेक्शनों से कल्पना को मानसिक तनाव से तो राहत मिल जाती थी, परन्तु एक सन्देह उसके मन में उठने लगा कि किसी दिन भी मनीष, नींद के इंजेक्शन के बहाने उसे कुछ और भी दे सकता है।

कल्पना ने अपनी रीता भाभी से आग्रह किया कि मन परेशान होने पर वह भला-बुरा सब लिख डालती है ··· चिन्ता मत करना ··· कल्पना परिस्थितियों से जूझना अच्छी प्रकार जानती है ··· और यह भी कि रीता उन मतभेदों के सम्बन्ध में कुछ न लिखे क्योंकि अमृतसर से आए हुए पत्रों को मनीष भी पढ़ता है। मनीष को सन्देह न होने पाए कि वह घर के सभी समाचार भाभी को लिख भेजती है।

उसने एक पत्र में रीता भाभी को यह भी विश्वास दिलाया कि बेटी मनीष की ही है। सोसाइटी में उठने-बैठने में आनन्द लेने की बात और है, शारीरिक सम्बन्ध उसने किसी भी अन्य पुरुष से नहीं रखे हैं। ··· और भी कि पारिवारिक सम्बन्धों को कल्पना बहुत महत्व देती है ··· कभी-कभी क्रोधावेश में काँपते मनीष की आँखों में उसे अपनी मौत दिखलाई देने लगती है ··· परन्तु भाभी चिन्ता न करें, अपनी बेटी के अच्छे पालन-पोषण के लिए वह मौत से भी टक्कर लेगी। ··· दीपा बड़ी होकर खूब उन्नति करे; यही उसकी हार्दिक कामना है··।

कल्पना ने यह भी लिखा कि दीपा के जन्म के बाद से उसे क्लब की ज़िन्दगी और पार्टियों की चमक-दमक से घृणा हो गई है। वह चाहती है कि अधिकांश समय अपनी बेटी के साथ रहे, परन्तु मनीष प्रायः बेटी को उससे दूर भेजने की बातें किया करता है। वह चाहता है कि पहले की ही भांति कल्पना अब भी उसके समाज में, उसके साथ आकर्षण का केन्द्र बनी रहे।

ऐसा चाहकर वह सम्भवतः अपने अतीत और वर्तमान, तथा अपने मन की एकाकी दुनियाँ को भूलना चाहता है। औरों की दृष्टि में पत्नी के साथ अधिक लगाव दिखलाकर मानो वह अपने मन की घृणा, क्रोध और तिरस्कार से मुक्त हो जाएगा। लेकिन···लेकिन, कहाँ मुक्त हो पाया वह···एक के बाद एक घटनाएँ कहानियाँ बनकर उसके जीवन में जुड़ती चली गईं। उसके हृदय की संवेदना ही जैसे समाप्त होने लगी है। बौद्धिक स्तर पर जीते हुए उसे स्वयं से अर्थात् वर्तमान मनीष से विगत के मनीष को अलग कर देना पड़ता है। जितना ही वह नए मनीष के रूप में सिमटकर वर्तमान को भोगने की चेष्टा करता है, उसका विगत उस पर हावी होता चला जाता है। अप्रिय घटनाओं की पकड़ उसे जकड़ती चली जाती है और विवश-सा वह अपना सन्तुलन खोने लगता है।

ऐसी ही किसी घड़ी में उसने नींद की दवा स्वयं लेनी आरम्भ की और कल्पना को भी देना शुरू किया।

× × ×

कल्पना की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से तीन तथ्य सामने आए। नींद का इंजेक्शन देने के बाद उसका गला घोंटने का प्रयास किया गया। कल्पना की मौत को आत्म-हत्या का रूप देने के लिए मृत देह को स्थान-स्थान पर मिट्टी का तेल डालकर जलाया गया। सारे शरीर पर एकदम ही तेल छिड़ककर जला देने से गन्ध इधर-उधर फैलती और तेजी से फैलता हुआ धुँआ सारी कहानी कह जाता। अतः बिस्तर और कल्पना के शरीर पर थोड़ा तेल डालकर आग लगाई गई और तनिक-सा जलते ही फिर पानी डालकर बुझाया गया··· इस कारण न तो शरीर और न तो बिस्तर ही पूरी तरह जल सका था।

स्थान-स्थान पर पानी से भीगा हुआ भी था। बार-बार जलाने और बुझा देने के प्रयत्न में फर्श पर दियासलाई की तीलियाँ बिखर गई थीं।

कल्पना ने आत्महत्या का विचार किया होता, तो शरीर पर तेल उड़ेलने के पश्चात् दियासलाई की एक या दो तीलियाँ पर्याप्त होतीं। बार-बार तीलियाँ जलाने से सम्भव है, व्यक्ति का आत्म-हत्या का विचार ही बदल जाय।

कल्पना के चेहरे की कान्ति से भी यह आभास नहीं हो सका कि उसने कोई ऐसा प्रयास किया होगा।

× × ×

अदालत में मुकदमा आरम्भ होने से पहले, दरोगा को पचीस हजार रुपए देकर खरीदने की चेष्टा की गई। एस० पी० को मित्रता का ख्याल था और उसका ट्रांसफर होने की सम्भावना थी। अतः वह चालीस हजार की धन-राशि भी हाथ से नहीं जाने देना चाहता था। परन्तु, दरोगा प्रीतमसिंह ने मनीष का विगत जीवन भी टोह लिया था। वह जिद पर अड़ गया कि जिस व्यक्ति ने तीन लड़कियों की जिन्दगी से खेल किया, उसे मैं बिना दण्डित कराए नहीं छोड़ूंगा, भले ही नौकरी छूट जाय।

दारोगा के चक्रव्यूह की सूचना मिलते ही जमानत पर छूटा मनीष कहीं गायब हो गया। दारोगा भी बहुत सतर्क था। उसने उत्तर प्रदेश तथा बिहार की पुलिस तथा सी० आई० डी० वालों की सहायता ली। मनीष एक अम्बेसडर कार में बैठा बिहार की सीमा पार कर नेपाल की सीमा में प्रवेश करना चाह रहा था कि पकड़ लिया गया। जमानतदार को भी राहत मिली।

एडवोकेट गिरिशचन्द्र और गोपाल ने कानून की ढेरों पुस्तकें चाट डालीं। एस० पी० से सम्पर्क तो था ही। एस० पी० भी काफी दुखी था, परन्तु दारोगा ने कमर कस ली थी, कि इन पैसेवालों के अपराधों को पैसे से नहीं ढकने दूँगा। मनीष का समाज में अपमान हो और कानून के हाथ उसे दण्डित करें, इतना ही वह चाहता था।

इस बार जब अदालत में मनीष को पेश किया जाना था, एस० पी० के बार-बार संकेत करने पर दारोगा ने ध्यान नहीं दिया और हवालात से अदालत

तक, उसके हाथों में हथकड़ियाँ पहनाकर उसे सामान्य कैदी की भाँति ही पैदल ले गया।

इतने बड़े घराने का व्यक्ति, इस प्रकार दीन-हीन अवस्था में सड़क पर पैदल ही हथकड़ियाँ पहने चला जा रहा था। जो भी देखता, साथ चल देता। कचहरी पहुँचने तक काफी भीड़ जमा हो गई थी। कोई दूसरा अवसर होता, तो दारोगा भीड़ को तितर-बितर करने की कोशिश करता। परन्तु उस भीड़ को देखकर लोगों के मुख पर उभरते घृणा और तिरस्कार के भावों को देखकर गर्दन झुकाए डाक्टर मनीष को साथ लेकर वह बड़े दर्प से चला जा रहा था।

जनसमुदाय में लोग दारोगा की सराहना कर रहे थे। दारोगा प्रीतमसिंह राजपूत ने अपने नाम और पद को सार्थक कर दिया। आज तक न जाने कितने दारोगा आए, सभी साहू साहब की ड्योढ़ी पर सलाम झुकाने आते थे। यह पहला व्यक्ति था, जिसने मिलती हुई धन-राशि को ठुकरा दिया और अपनी रोजी-रोटी को दाँव पर लगाकर बड़े साहस के साथ अपने कर्त्तव्य-पालन का भार उठाया था। लोग अनुभव कर रहे थे कि प्रशासन में ऐसे ही कर्मठ व्यक्तियों की आवश्यकता है। ऐसे ही व्यक्ति देश की दशा सुधार सकते हैं।

● ● ●

:१८:

इन दिनों मेडिकल कालेज के काटेज वार्ड में एक ऐसे रोगी की परिचर्या चल रही थी, जिसे देखने के लिए डाक्टर मधु को बुलाना नहीं पड़ता। स्वयं

आकर वह दो-तीन बार उस वार्ड में चक्कर लगा जातीं और उनके साथी डाक्टर भी रोगी की विशेष देखभाल में लगे रहते। यह रोगी थे श्री हरिमोहन··· मनीष के पिता। हार्निया का आपरेशन कराने के लिए वह लखनऊ आए थे और उनके साथ उसका बड़ा बेटा दिनेश भी आया था।

बहुत सोचने पर भी हरिमोहन साहस नहीं जुटा पा रहे थे कि कैसे बिगड़े हुए सम्बन्धों की खाई को पाटें। किस प्रकार डॉ० प्रोफेसर सुशीलचन्द्र से सम्पर्क स्थापित करें? किस प्रकार उन्हें आपबीती सुनाकर क्षमायाचना करें? कैसे अपने मित्र सुशील से पुराने मित्र-भाव से मिलें? कैसे···?

चौड़े काले फ्रेम के चश्मे से झाँमती हुई सुशीलचन्द्र की मोहक आँखें और चेहरे पर सदा एक-सा छाया रहनेवाला सौम्य भाव उन्हें प्रेरित भी कर रहा था कि···मिलो तो सही···सुशील दूर रहते हुए भी तुम्हारा अपना है···बहुत अपना। उसने तो कभी किसी बात का गिला किया ही नहीं। वह खादी का कुर्त्ता-पायजामा और कुर्त्ते पर हल्के रंग की सदरी पहनता था। उसका पहनावा तो क्या ही बदला होगा···हाँ, इन दस-ग्यारह वर्षों में उसके मुख पर झुर्रियाँ पड़ गई होंगी···बाल भी सफेद हो गए होंगे···शायद।

मधु भले ही नामी-गरामी डाक्टरनी हो गई···फिर भी, बेटी का विवाहित कुँवारापन कैसे झेला होगा सुशील ने? दस-बीस गालियाँ सुनाता, भरे बाजार में बेइज्जती कर देता···परन्तु उसने जीवन के गरल को चुपचाप घूँटकर शिव का आसन पा लिया है और···और मैं आज तक अपने पाप की अग्नि में जल रहा हूँ, तप रहा हूँ।

उनके मुँह से एक लम्बी आह निकल गई। दिनेश भी समझता था कि शारीरिक पीड़ा से अधिक यह मानसिक पीड़ा है, जो दद्दा जी को घुलाए जा रही है। दिन प्रतिदिन वह दुर्बल होते जा रहे हैं। काश, दिल्ली से लौटते ही सुशील चाचा से सब कुछ कह दिया होता···शायद वही कोई रास्ता सुझा देते और आज यह नौबत न आती···सुशील चाचा जब तक मुरादाबाद रहे, हर समय आवश्यकता में काम आए। जब से उन्होंने घर छोड़ा, हमारे परिवार पर

कितनी विपत्तियाँ आईं। कभी-कभी ऐसा लगता है, भरे-पूरे परिवार की स्थिति लदी हुई नौका के समान है, जिसका सन्तुलन तनिक भी बिगड़ जाय, तो एक दुर्घटना···शायद और फिर एक दुर्घटना से दूसरी का जन्म और एक लम्बी शृंखला को कड़ियों में कसते जाना···। सब कुछ होते हुए भी जीवन-रस चुक जाता है···। सारा वैभव यथावत् होते हुए भी···बेजान सी जिन्दगी रह जाती है। जीवन की चमक···जीवन की कांति ही जैसे क्षीण हो जाती है।

वह सोच रहा था—काश, मनीष को त्यागकर मधु तपस्विनी न बन गई होती। उस निरन्तर उलझते जाते व्यक्ति को कुछ सहारा देती, कोई और मार्ग सुझा देती, कुछ नियन्त्रण में रखती·· तो भी उसे उतना ही पुण्य मिलता, जितना आज उसे उसके सैकड़ों रोगियों के रोगमुक्त होने पर मिल रहा है। अपने ही विचारों में उसे झटका-सा लगा। वह स्वयं पुरुष होकर एक नारी से··एक दुर्बल-सी नारी से यह अपेक्षा कर रहा है कि वह एक पुरुष को सम्बल प्रदान करती···?

दद्दाजी जिस मनस्ताप में तप रहे हैं, उसकी कुछ ऊष्मा उसके अपने मन को भी झुलसाती रही है। वह तनिक साहस करता और सब कुछ उसी समय बतला देता, तो उसके अपने जीवन पर भी कलह का आवरण न पड़ता जाता। जीवन में यदि विश्वास मुरझाने लगे, तो रह ही क्या जाता है··· ?

दद्दाजी को इलाज के लिए लखनऊ ले आने पर इस सारे अन्तर्द्वन्द्व के बीच उसे एक बात सूझी। क्यों न मधु से मिलकर बात करके देखे···। दद्दाजी और स्वयं दिनेश के मन में बार-बार सुशील चाचा और मधु की बात सहारे के लिए उठती है, तो एक बार अनुभव कर लेने में क्या हानि है ? देख तो ले कि वह आधार-स्तम्भ इन लोगों की भावना तक ही सीमित है या आज भी पहले जैसा दृढ़ और स्थिर है।

दिनेश के लिए लखनऊ नगर नया ही था। वहाँ उसका किसी से विशेष परिचय या सम्पर्क नहीं था। मनीष और गोपाल के परिचित किसी डाक्टर या वकील की सहायता लेना दद्दाजी को स्वीकार न था। दद्दी को लेकर

दिनेश स्टेशन के पास ही एक होटल में ठहर गया। उनके खाने-पीने और आराम की व्यवस्था कर वह मेडिकल कालेज चला गया।

× × ×

डाक्टर मधु अपना राउंड पूरा करके अभी-अभी कमरे में लौटी थीं। इस समय का काम समाप्त करके वह घर जाने की सोच रही थीं, तभी उनके चपरासी ने एक पर्चा उन्हें पकड़ाया। तुरन्त ही उन्होंने दिनेश को अन्दर बुलवाया।

दिनेश मन-ही-मन आशंका और संकोच के भार से दबा जा रहा था। मधु के धवल वस्त्र और दीप्तिमान् मुखमण्डल को देखकर उसे अपने और दब जाने का, बौना हो जाने का आभास होने लगा। धड़कते दिल से वह अगले क्षणों के लिए स्वयं को तैयार कर रहा था। जैसे ही उसने मधु के कमरे में प्रवेश किया, मधु ने खड़ी होकर सहज मुस्कान के साथ दिनेश का स्वागत करते हुए कहा, "आओ-आओ बड़े भैया, कैसे हैं आप ?"

हर्ष और पुलक का अनुभव करते हुए दिनेश आश्चर्य-चकित सा मधु की ओर देखता रह गया। अपनी झेंपती हुई सी हँसी में वह आगे बढ़ा और मधु के संकेत पर सामने की कुर्सी में बैठ गया।

मधु ने गरम-गरम काफी और स्नैक्स मँगवाए। कुशल समाचार पूछे। दिनेश का बड़े भाई की भाँति सम्मान करते हुए, उसने अत्मीयता के पुराने भाव को वातावरण में ऐसा घोल दिया कि दिनेश हैरान भी था, प्रसन्न भी और आश्वस्त भी हो रहा था।

वह अपनी कार में उसे अपने निवास पर ले गई। वहाँ से पिता को साथ लेकर वह होटल गई और होटल से दद्दाजी को सामान रहित अपने यहाँ ले गई। उसने दद्दाजी को अपनी क्लीनिक में देखा, उनकी परीक्षा की और उन्हें आश्वस्त किया कि अब वे चिकित्सा की चिन्ता न करें। वह स्वयं सारी व्यवस्था में लग गई।

सुशीलचन्द्र से मिलकर हरिमोहन बच्चों की भाँति रो पड़े। मधु के निवास पर जब वह पहुँचे, तो उनकी कृश काया और हतप्रभ मुखश्री को देखकर सोमा-

देवी का दबा हुआ क्रोध, कभी-कभी उमड़ता-घुमड़ता आवेश, सब वह गया ··· आँसुओं की धारा बनकर ···।

हरिमोहन के उपचार के दिनों में डॉ० मधु और परिवार के सभी सदस्य भलीभाँति देख-भाल करते रहे। सुशीलचद्र को उन्होंने सारी आपबीती सुनाई। थोड़ी-बहुत उड़ती-उड़ती तो वह सुन भी चुके थे, परन्तु हरिमोहन के मुख से सविस्तर सुनकर सोमादेवी को अनुभव हुआ कि सचमुच मधु ने बहुत बुद्धिमानी की···ईश्वर ने न जाने किस संकट के कीचड़ में धँसते हुए पहिए को अपने सबल करों से रोक लिया, सहारा दे दिया।

यह ईश्वर की ही लीला है कि आज उनकी बेटी, वह बेटी, जिसे मँझधार में छोड़ दिया गया था, एक किनारे लग गई और अपने जीवन के साथ-साथ हजारों व्यक्तियों के लिए सम्बल तथा प्रकाश बनकर प्रभासित हो रही है।

अब सोमादेवी की हर बात का केन्द्र, हर विचारधारा का मोड़, ईश्वर पर आकर ठहर जाता। वैसे ही भजन-कीर्तन और सत्संग में अपना अधिकांश समय बिता रही थीं। मन में एक काँटा था कि अपनों ने ही धोखा दिया ··· मगर अब वह निकल गया और ईश्वर से अब वह उन अपनों की भी मंगलकामना कर रही थीं।

+ + +

: २० :

दद्दा जी के उपचार में मधु ने बड़े मनोयोग से देख-भाल की। उनके आपरेशन के समय भी निरन्तर साथ रही। उनके स्वस्थ होने पर वापस घर

जाने की बात हुई। एक अनजानी सी उदासी मधु के मन पर छाने लगी। वह स्वयं परेशान थी कि ऐसा क्यों हो रहा है। अब तक तो वह उस प्रकार के रीतेपन वह अनुभव नहीं करती थी। अब अचानक उसे क्या हो रहा है।

भावनाएँ कब तक छिपी रह सकती हैं···कितनी ही बार उसने बहाना किया था और पढ़ने के समय कभी अवकाश मिलता तो चुपचाप दो-तीन घंटे बाहर बिता आती थी। उसकी साथी डाक्टरों को पता भी नहीं लगता था कि वह कहाँ जाती है। जब भी कोई सहपाठिनी उससे पूछती, मधु कुछ-न-कुछ सामान खरीदने का बहाना बना देती या अपनी किसी पुरानी सहपाठिनी के लखनऊ में होने की बात कहकर टाल दिया करती। उसकी अन्तरंग मित्र कुमुद टंडन भी नहीं जान पाती थी कि वह कहाँ जाती है।

एक दिन, कुमुद ने अपने ममेरे भाई को, जिसे मधु नहीं जानती थी, मधु का पीछा करने का संकेत कर दिया। मधु ने सिटी बस में मेडिकल कॉलेज से चारबाग का टिकट लिया। चारबाग से दूसरी बस में बैठकर वह हजरतगंज पहुँची। वहाँ कुछ देर घूमकर हजरतगंज से चौकवाली बस पकड़कर वह मेडिकल कॉलेज लौट आई। इस भ्रमण में—दूकानों पर लगे साइनबोर्ड, बस में चढ़ती हुई भीड़, बाजारों की चहल-पहल, कहीं-कहीं एकत्र खड़े कुतूहल में जमा लोग···न किसी दूकान में जाना, न कुछ खरीदना, न किसी से बोलना, न किसी की ओर देखना।···और वापस लौटते समय मेडिकल कॉलेज के सामनेवाली दूकानों से ही फल इत्यादि खरीदकर मधु का हॉस्टल वापस आ जाना···।

अपने भाई से यह विवरण सुनकर कुमुद चिन्तित हो उठी थी। उसने मधु को विश्वास में लेकर सब कुछ कह डालने को विवश किया। उस दिन पहली बार मधु बिलख-बिलखकर रोई। वस्तुतः उसने स्वयं को काम में भुला देना चाहा था। तब भी कुछ बीते क्षण अकस्मात् उसे छू जाते थे। वह अपने मन का सूनापन झेलने के लिए, सबसे अलग, एकान्त में ही कुछ चिन्तन-मनन करती, कुछ अपने में ही बटोरकर नए सिरे से जीने का संकल्प लेती

और नई भावना, नई ताजगी के साथ, जीवन के लिए कुछ ऊर्जा संचित कर लेना चाहती। कुमुद ने उससे पूछा भी था—

"मधु, बस की भीड़ में बाजार के शोरगुल में तुझे कौन सा एकान्त मिल जाता है ?"

कुछ सोचती हुई-सी मधु कह रही थी—"दौड़ती हुई बस में चुपचाप बैठे हुए भी मुझे गति का आभास मिलता है···एक नई स्फूर्ति मन में भरने लगती है····जीवन को चलते रहने की···निरन्तर ही चलते रहने की प्रेरणा मिलती है।···और भीड़ भरी सड़कों पर, भागते हुए व्यक्तियों और दौड़ते हुए वाहनों में स्थान-स्थान पर एकत्र भीड़ और कुतूहल में झुके हुए चेहरों को देखकर मैं अपना रीतापन भूल जाती हूँ।·· दूकानों पर लगे साइनबोर्डों की जड़ स्थिति मुझे अपने चेतन होने का, चलने का बोध कराती है··एक चित्रलिखी जड़ता से मुझे उबार लेती है। अनेक अनजाने लोगों के बीच से गुजरते हुए मुझे लगता है···मैं अकेली नहीं हूँ।·· इस जीवन-संगीत में किसी-न-किसी लय में मैं भी सबके साथ जुड़ी हुई हूँ···। अन्य व्यक्तियों के सुख-दुःख को देखकर मैं प्रतिक्रिया को अभिव्यक्त नहीं करती, फिर भी मैं उस स्थिति को महसूसती हूँ · और तब अस्पताल में पड़े, पीड़ा से कराहते हुए रोगियों को देखकर अनायास ही मेरा नाता उनसे जुड़ जाता है।···ये वे ही लोग हैं जो प्रायः सड़कों पर घूमा करते हैं, बसों में बैठा करते हैं···बेजान इमारतों को जीवन में बदल देते हैं···और··· और···मैं कोई अलग इन्सान नहीं·· इन्हीं में से एक हूँ। इन्हीं में से एक हूँ !!·· ये सभी मेरे हैं···।"

उसके बाद कुमुद ने कभी मधु को अकेली नहीं घूमने दिया। वह स्वयं उसके साथ रही। अपनी भावनाएँ उस पर लादकर नहीं, उसकी मन-तरंगों से एकाकार होते हुए, एक-दूसरे के साथ आनन्दित होते हुए···एक-दूसरे का सुख-दुख बाँटते हुए।

छात्रावासों में घनिष्ठ मित्रों की जोड़ियाँ प्रायः ही चर्चा का विषय रहती हैं। ऐसी ही बहुचर्चित जोड़ी कुमुद टंडन और मधुरिमा की थी। दोनों ने

साथ-ही-साथ एम० बी० बी० एस० और एम० एस० भी किया। मधु यहीं नियुक्त हो गई और कुमुद अपने डॉक्टर पति के साथ विदेश चली गई।

कुमुद ने विदेश जाकर भी निरन्तर पत्र-व्यवहार द्वारा मधु से सम्पर्क रखा और अपनी अनुपस्थिति की ऊब मधु को नहीं होने देने का पूरा प्रयास किया। मधु भी दिन-प्रतिदिन अधिक व्यस्त होती जा रही थी। बढ़ती हुई व्यस्तता की स्थिति में भी पिता और माँ द्वारा पढ़े जानेवाले दर्शन और अध्यात्म से सम्बद्ध साहित्य उसे भी अपनी ओर खींचता था। कुछ अवकाश निकालकर वह गीता, अरविन्द साहित्य, जैन-बौद्ध साहित्य, बाइबिल और कुरान इत्यादि सभी का थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर चुकी थी। आध्यात्मिक चिन्तन-मनन ने उसके व्यक्तित्व को प्रखरता प्रदान की। यही कारण था, अपने आस-पास के वातावरण पर वह छा जाती थी।

इस अध्ययन-मनन से मन की अनेक गुत्थियाँ स्वयं हो सुलझती गईं। अपने ही मन की विगत भ्रमित-सी स्थिति पर कभी-कभी उसे हँसी आ जाती थी। उसके अन्दर और बाहर भी, मानो समान रूप से जीवन का प्रकाश फैलने लगा था।

× × × ×

हरिमोहन के परिवार के अधिकांश सदस्य उनके आपरेशन के समय लखनऊ आ गए थे। मनीष और गोपाल नहीं गए। सभी लोग पन्द्रह दिन मधु के निवास पर रहे। सोमा देवी ने सबका ख्याल रखा। सरिता को असमञ्जस की स्थिति से मधु ने उबार लिया। थकी-हारी मधु कभी तो तीन-साढ़े तीन बजे तक दोपहर के भोजन के लिए आ पाती थी। तब भी घर आते ही हँसती-हँसती, सबसे बोलती हुई मधु को देखकर ऐसा लगता था, जैसे वर्षों से वह इस भरे-पुरे परिवार के साथ रह रही है। प्रायः घर आते हुए तीनों बच्चों के लिए कुछ न कुछ चीजें अवश्य ले आती। दिनेश के दोनों बेटे सिद्धार्थ और कपिल तथा मनीष की बेटी दीपा भी साथ थी।

खाना खाकर मधु अपने कमरे में आराम करने लगती, तब भी बच्चे उसे घेर लेते थे। सरिता बच्चों को बाहर भेजकर मधु से कुछ देर आराम कर लेने का

आग्रह करती। मधु के सामने कभी सरिता बच्चों को झिड़कती या डाँटती, तो मधु प्यार से बच्चों को चुप करा देती और कहती, "भाभी, ये बच्चे भगवान् के रूप हैं, क्यों बेकार इन पर बिगड़ती हो।"

× × × ×

आज रविवार था। धूप-छत्री के नीचे लॉन में आराम-कुर्सी पर अधलेटी सी मधु पत्र-पत्रिकाएँ उलट रही थी। सिद्धार्थ और कपिल गेंद खेल रहे थे। नन्हीं दीपा कुछ देर तक तो दोनों का खेल देखती रही, फिर धीरे से मधु की कुर्सी के पास आकर खड़ी हो गई। मधु ने पत्रिका से नजर उठाई, पूछा, "क्या बात है दीपा, तुम क्यों नहीं खेलतीं ?"

"आण्टी, हमें अपने साथ कोई नहीं खेलने देता। सिद्धार्थ भैया, कपिल भैया खुद ही खेलते हैं। हमें मार देते हैं····आण्टी एक बात कहें···?"

"हाँ हाँ, कहो बेटा, क्या बात है ?" प्यार से उसका गाल थपथपाते हुए मधु ने पूछा।

"आण्टी, हम मुरादाबाद नहीं जाएँगे। वहाँ पापा भी हमें मा·ते हैं। बस, गोपाल अंकल की डॉली के प्यार करते हैं।"

"पापा तो बहुत अच्छे हैं बेटा, अब तुझे नहीं मारेंगे।"

"नहीं आण्टी, हम तो यहीं रहेंगे····हम वहाँ नहीं जाएँगे।"

मधु दीपा की बात सुनकर हैरान हो गई। इसे क्या जवाब दे, समझ नहीं पा रही थी वह···। नन्हीं सी बच्ची है यह··सरिता भाभी इसे इतना स्नेह करती हैं···परन्तु उन्हें घर का भी सब देखना पड़ता है। मनीष और गोपाल दोनों जायदाद का बँटवारा करने के बाद अलग रहते हैं। मनीष ने तो दीपा को सरिता भाभी को सौंप दिया है··लेकिन यह सुकुमार कली सी दीपा·· कल्पना का लावण्य और मनीष की छवि दोनों ही दीपा में उतर आई है···यह नन्ही सी जान अभी से इतना अलगाव महसूस करने लगी·· यह सोचते ही मधु को लगा कि उसका विगत एकाकीपन ही दीपा के रूप में उसके सामने खड़ा है। उसका जी चाहा, प्यार की छाया के लिए भटकती दीपा को हृदय से

लगा ले और कहे, "बेटी, मैं ही तेरी माँ हूँ,···पिता हूँ···तू सुरक्षित है।" न जाने कितने अपरिचित बच्चे अपने स्कूल की फीस लेने प्रतिमाह आते हैं···जाते समय आत्मसंतोष का भाव उनकी आँखों में दिखलाई पड़ता है···उन्हें देखकर वह स्वयं भी तृप्त हो जाती है···प्रकारान्तर से यह तो···अपनी ही सी है।

मधु अपने ही मानसमन्थन में डूबी थी। उधर दीपा उसे मौन देखकर, कोई आश्वासन न पाकर सुबक-सुबक कर रोने लगी। मधु जैसे सचेत हो गई। उसने दीपा को खींचकर अपने अंक में भर लिया। बोली, "अच्छा यहीं रहना बेटे, यहीं रहना···चुप हो जाओ रानी गुड़िया।···चलो तुम्हें टाफी दें···।"

"चलो आण्टी, मम्मी से मेरी फ्राक भी तो निकलवाओ। वह सामान बाँध रही हैं।"

मधु की उँगली पकड़कर उसे खींचती हुई-सी दीपा, मधु को कमरे में ले गई। मधु यन्त्रवत् खिंची चली जा रही थी। कमरे में दिनेश और सरिता नौकरों की सहायता से सामान बँधवा रहे थे। पंजाब मेल से आज ही मुरादाबाद जाना था।

आदेश की मुद्रा में दीपा ने अपनी माँ से कहा, 'मम्मी, मैं मुरादाबाद नहीं जाऊँगी। मेरे कपड़े दे दो। मैं आण्टी के पास ही रहूँगी, यहीं पढ़ूँगी···।"

काम में व्यस्त सरिता ने दृष्टि उठाई और अवाक् रह गई। एक बार उसने मधु की ओर देखा कि मधु गर्दन झुकाए खड़ी हैं निर्विकार, निर्लिप्त-सी होने की कोशिश करती हुई 'प्रश्नचिह्न की दृष्टि से उसने दिनेश की ओर देखा। दीपा ने फिर मौन भंग किया, "दो न मम्मी, जल्दी मेरे कपड़े दे दो,···मैं नहीं जाऊँगी।"

चारों बुजुर्ग—हरिमोहन और उनकी पत्नी पार्वती तथा मधु के माता-पिता बरामदे में कुर्सियों पर बैठे बातें कर रहे थे। दीपा के आग्रह ने, इस नए प्रसंग ने, उनका ध्यान आकर्षित किया। कोई कुछ बोलता, इसके पहले ही दीपा अपनी फ्राकों की गड्डी लेकर हरिमोहन के सामने से यह कहती हुई मधु के कमरे में चली गई, "दादा जी, हम यहाँ रहेंगे डाक्टर आण्टी के पास। देखो, मम्मी से मैंने अपने कपड़े भी निकलवा लिए हैं।"

सोमा के मुख पर कुछ उलझन-सी प्रतीत हुई। जैसे कहना चाहती हो कि मैं अपनी बेटी पर कोई बोझ नहीं लादने दूँगी।

गाड़ी ठीक समय पर चल दी···मधु ने दीपा को गोद में उठा रखा था। प्रसन्न दीपा टा···टा कर सबको बिदा दे रही थी। गाड़ी में से सिद्धार्थ और कपिल दीपा की ओर हाथ हिला रहे थे। सरिता की आँखों के आँसू सुख-दुःख-मिश्रित आवेग से मन को भिगो रहे थे···।

गाड़ी खिसककर गति पकड़ती और वह धीरे-धीरे आँखों से दूर होती जा रही थी ··। गाड़ी के इंजन और डिब्बों का आकार क्रमशः घटता जा रहा था। अन्त में, गहरे रंग का चौकोर-सा टुकड़ा भी धुँए के बादल उड़ाता हुआ, रेल की पटरियों से फिसलकर आँखों से ओझल हो गया। रह गईं ··· केवल चमचमाती हुई पटरियाँ ···। ये पटरियाँ, जो दूर जाते-जाते भी मिलने का आभास देती थीं ··· न जाने कितने बिछुड़े हुओं को मिलाती होंगी प्रतिदिन··· परन्तु इनका अस्तित्व स्वयं न मिलने का ही है। दूर तक, जहाँ तक भी ये जाती हैं, जहाँ तक भी ये साथ रहती हैं, इन्हें अलग-अलग ही रहना है, नदी के दो किनारों की तरह ···। ···मधु के ठहरे हुए से मन और व्यस्त जीवन का मानों एक गतिशील प्रतिरूप हों ये पटरियाँ ···।

मधु वहाँ खड़ी-खड़ी सोच रही थी कि मेरे जीवन की गतिशीलता ने, समय के प्रवाह ने मुझे जिस नए मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया है, इसकी तो मैंने कल्पना भी नहीं की थी।

निरन्तर प्रवहमान, सतत गतिशील उसकी जीवन-सरिता अनेक सूने अरण्यों से गुजरती रही; अपने मन के एकाकीपन से संघर्ष करती रही। माता-पिता की छत्रच्छाया, उसके जीवन को जो अनिवार्यता थी, वह उसे मिली ···। उस छत्र-च्छाया का ही तो सम्बल था कि अपनी भरपूर सामर्थ्य से उसने मधु की जीवन-लतिका को कभी कुम्हलाने नहीं दिया।

एक वह भी घर था, जो अपना-सा ही था और जिसके कोने-अँतरों में उसके बचपन की अनेक सुखद स्मृतियाँ छिपी थीं। उसी घर के लोगों ने यहाँ

आकर मानों उन यादों के घावों को हरा कर दिया है ····· और उभार दिया है ··· ।

मनीष आत्मविभोर कर देनेवाली, प्रेम में भिगो देने वाली सुखद, सुन्दर लहरी के समान, भावनाओं की सुगन्धित थपकी-सी देता हुआ जीवन में आया था। लेकिन, जाते-जाते भयंकर तूफान-जैसा झटका देकर, उसके तन-मन को झकझोर कर चला गया था। अपने पीछे छोड़ गया अनेक कोमल और कठोर यादों की छायाएँ, जो धीरे-धीरे धूमिल पड़ने लगी थीं ··· धुँधलाने लगी थीं। और अब तो जैसे उसके मन की स्लेट से सब धुल-पुँछकर साफ होने लगा था ···

उसके चारों ओर फैली दवाओं की गन्ध, उसके चारों ओर घिरी हुई बीमारों की भीड़ ··· तरह-तरह की बीमारियाँ ··· निरन्तर बढ़ता हुआ रोगों का सैलाब ··· वातावरण में प्रतिक्षण टकरानेवाली, गूँजनेवाली पीड़ा की कराह और पुकारों की आहट ··· सहानुभूति की याचना करनेवाली विवश आँखें ··· मौत से संघर्ष करनेवाले रोगी ही मानो मधु के दिनों और रातों की व्यस्तता का ताना-बाना बुनते रहते हैं। इन सबके बीच समय भी कहाँ रह जाता है उसे अपने लिए कुछ सोचने का ··· लेकिन, नहीं, यह मात्र उसका भ्रम है।

उस पुराने परिवार के लोगों ने आकर, जैसे फिर से उसे कुछ स्मरण दिला दिया···सब लोग वैसे ही हैं···जीवन वैसा ही है···कुछ भी तो नहीं बदला। इस बहती जीवन-धारा के एक मोड़ पर उसे मुड़ना पड़ा था और चलकर मनीष भी दूसरी ओर मुड़ गया···। दो विपरीत दिशाओं में मुड़कर वह और मनीष तो सदा के लिए एक-दूसरे से दूर हो ही गए थे, लेकिन इस नन्हीं-सी दीपा ने आकर जैसे पटरी बदल दी है···दूर जाती हुई पटरियाँ मानो एक-दूसरी से किसी सन्धिस्थल पर मिलकर अलग हो गईं···दीपा शायद ऐसा ही सन्धिस्थल बनकर आई है।

मधु का भ्रम था कि वह सबसे कटकर जी रही है। लेकिन दीपा को देखकर उसके हृदय की उमंग, प्रेम का प्रवाह मानो और अधिक मुखरित हो उठा है। अन्तर से जैसे वात्सल्य का स्रोत फूट पड़ा है··· इस मुड़ती जीवन-धारा

को और गति मिल गई ··अरण्य में बहती गंगा के किसी अँधेरे मोड़ पर, दीप-स्तम्भ सी प्यारी दीपा···उसकी गोद में थी। पुलकित होकर उसने उन सूनी पटरियों को देखकर दीपा को चूम लिया।

"आओ चलें" कहकर सुशीलचन्द्र और सोमा देवी घर चलने को उद्यत हुए। दीपा बड़ी तेजी से मधु को गोद से फिसलकर नीचे उतर गई और उसने सोमा देवी की उँगली पकड़ ली।

दीपा की जल्दबाजी देखकर मधु के मुख पर मुस्कान बिखर गई। माँ के पीछे-पीछे वह भी चल दी, गुनगुनाती हुई—

किसने किसका पन्थ निहारा,
कौन किसी का बना सहारा।
कल-कल नदिया गाती जाती
बहता जीवन, मुड़ती धारा॥

● ● ●

डा. डिल्ली रमण रेड्डी
कल्याणी रेड्डी स्मारक
पुस्तकालय

मुद्रक—भार्गव भूषण प्रेस, त्रिलोचन, वाराणसी—१
३०/७-७६

८६०४३३
के ३६३

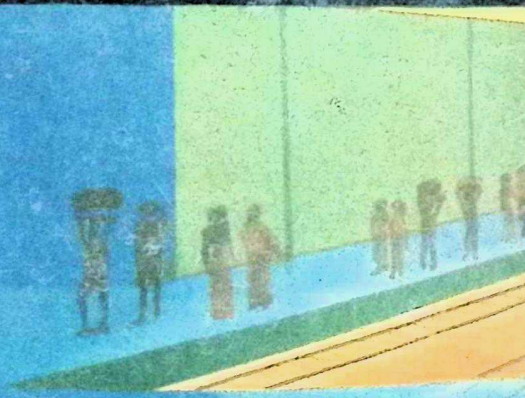

भार्गव ऑफसेट्स, मच्छोदरी, वाराणसी